

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र सर्वोदय जगत

वर्ष-40, अंक-07, 16-30 नवंबर, 2016



- गीता हर प्रकार की कट्टरता से मुक्त है - गांधी
- गांधी की अंतिम इच्छा स्त्रियां पूरी करें - विनोबा
- शांति मेरे लिए अपरिहार्य है क्योंकि मुझे विश्वास है कि युद्ध से कोई समस्या हल नहीं होती - जेपी

21 नवंबर : धीरेन मजूमदार पुण्य-तिथि

अन्त्योदय से ही क्रांति होगी।

- धीरेन मजूमदार

सर्व सेवा संघ

(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित

अहिंसक क्रांति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

सत्य, अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक

वर्ष : 40, अंक : 07, 16-30 नवम्बर, 2016

प्रधान संपादक

बिमल कुमार

मो. : 9235772595

संपादक

अशोक मोती

मो. : 9430517733

संपादक मंडल

डॉ. रामजी सिंह भवानी शंकर 'कुसुम'

संपादकीय कार्यालय

सर्व सेवा संघ, साधना केन्द्र

राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)

फोन : 0542-2440-385/223

ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com

Website : sssprakashan.com

शुल्क

मूल्य	:	05 रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये

खाता संख्या : 383502010004310

IFSC No. UBIN-0538353

Union Bank of India

Rajghat, Varanasi

इस अंक में...

1. धीरेनदा को श्रद्धांजलि...	2
2. मैं यह चुनौती आपको सौंपता हूँ...	3
3. विद्यार्थियों के प्रति...	8
4. अन्त्योदय से क्रांति...	12
5. सभ्यता का संकट...	16
6. गांधी की अंतिम इच्छा स्त्रियां पूरी...	17
7. खादी : अब तो करो या मरो की...	19
8. कविताएं...	20

संपादकीय

धीरेनदा को श्रद्धांजलि!

अति प्राचीन काल से भिन्न-भिन्न युगों में अंतिम जन के उद्धार के लिए अनेक महापुरुषों का जन्म हुआ और वे अनेक आंदोलन भी चलाते रहे। ऐसी ही क्रांति यात्रा के पथिकों में स्व. धीरेन मजूमदार एक खोजक पथिक रहे हैं, जिन्होंने अंतिम आदमी के उत्कर्ष के लिए और उनकी समस्याओं की बुनियाद की खोज में अपना जीवन लगा दिया। श्रम की महत्ता जीवन में परिलक्षित हो, इसके लिए न केवल जमुई के निकट खादीग्राम में 'श्रमभारती' की स्थापना की बल्कि अपने जीवन के कई वर्ष 'लोकगंगा' में गोते लगाने के साथ-साथ एक लम्बी क्रांति यात्राएं कीं, वह भी बैलगाड़ी पर। 45 वर्ष की उम्र से धीरेनदा ने गांव-गांव जाकर अंतिम आदमी की स्थिति को बड़ी गहराई से समझा, अपनी स्थिति की विवेचना की और क्रांति के नये आयामों की खोज आम आदमी के जीवन के साथ एकरूप होकर की।

1974 में ऐसी ही एक यात्रा के दौरान हमारी मुलाकात उनके एक पड़ाव सिमुलतला, जमुई में अपने एक मित्र कुमार शुभमूर्ति के साथ हुई थी। उनसे लम्बी बातें हुई थीं, जो इस बात का द्योतक था कि उनकी सोच में सदैव अंतिम व्यक्ति के उत्कर्ष और गांव के स्वराज्य पर ही चिन्तन चलता रहता था।

दादा के अभिनव प्रयोग 'घर-घर भिक्षाटन' ने हमारे ऊपर गहरा असर डाला था, जिससे 1974 जैसे बड़े आंदोलन को चलाने की सीख मिली थी। धीरेनदा ने कहा था : "लोग मानने लगे हैं कि हमारी दृष्टि सारे समाज को समान मानने की है, किसी के

साथ सहयोग और किसी के साथ विरोध या पक्षपात करने की नहीं है।"

इससे समाज में परस्पर सहकार वृत्ति बढ़ी। जो साथी भिक्षा के लिए घर-घर जाते, तो गरीब वर्ग के लोगों को यह चर्चा करते सुनते कि ये लोग सबको समान नजर से देखते हैं। ये दो मुट्टी तक मांगते हैं, अमुक बाबू से भी उतना ही लेते हैं, अधिक नहीं। कहीं-कहीं कुछ लोग साथियों से यह भी कहते हैं कि दादा जो हमारे घर ठहरते हैं उनसे हम बेधड़क मिल सकते हैं। अगर वे मुखिया के घर ठहरे होते हैं तो हमें उनसे मिलने की भी हिम्मत नहीं होती। उनकी इस भावना के कारण अपनी बात उनसे खुलकर कह पाते हैं। दूसरे जो नेता बड़े घर में ठहरते हैं उनसे ये बड़े लोग अपनी ही बात करते रहते हैं और हमारा सवाल दबा ही पड़ा रहता है।

धीरेनदा के ऐसे प्रयोग से ही भूदान-ग्रामदान में लगे साथियों के साथ-साथ हमारे जैसे युवाओं को समाज में काम करने की एक नयी दिशा मिलती थी और उनके अनुभवों पर सवार समाज में रच-बस कर हम काम कर पाते थे।

1974 में धीरेनदा से हुई वार्ता का एक छोटा अंश उस समय 'धर्मयुग' में "सरकारी टिले और गरीबी के गड्ढे" शीर्षक से प्रकाशित हुआ था। धीरेनदा के जीवन की अंतिम दीक्षा थी कि इस अभिनव क्रांति की बेला में 'अंतिम आदमी' को खोजने की उछल-कूद में समय गंवाने की जरूरत नहीं है। सीधे-सादे बुनियादी आदमी के कंधे से उतरकर उनके साथ खड़ा होना होगा और कहना होगा—"ये बुनियादी आदमी अपनी जगह जमे रहो। मैं भी तुम्हारे कंधे से उतरकर नीचे आ गया हूँ। बदलना मुझे है। मैं प्रायश्चित्त करने को तैयार हूँ, तुम मेरे गुरु रूप हो, मुझे भी श्रमिक बनाने की दीक्षा दो।"

स्व. धीरेनदा की पुण्य-तिथि पर ऐसे क्रांति-पुरुष को शत्-शत् नमन् व विनम्र श्रद्धांजलि।

मैं यह चुनौती आपको सौंपता हूँ

□ जयप्रकाश नारायण

देश के अधिकांश विश्वविद्यालयों में असंतोष व अशांति की लहरें उठ रही हैं। विद्या के परिसर यदि पुलिस व राजनीति के अखाड़े बनाये जा रहे हों तब यह सवाल सहज उठता है कि क्या शिक्षा आपने आपमें शांति का औजार नहीं है? अगर नहीं है तो क्या वह शिक्षा है? और फिर यह भी कि राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों में जो शिक्षा अपनी सम्यक भूमिका नहीं निभा सकती है, क्या उस शिक्षा को ही नई तरह से गढ़ने की जरूरत नहीं है?

जेपी का यह उद्बोधन न केवल युवा के मुखतिब है बल्कि देश और विश्व की तमाम समस्याओं यथा राजनीति बनाम अध्यात्म, युद्ध बनाम शान्ति, विदेश नीति और अंततः विश्व को युद्धहीनता की ओर ले जाने की एक विनम्र अपील है। —सं.

आपने दीक्षांत भाषण करने का जो सम्मान मुझे प्रदान किया है, उसके लिए मैं आभारी हूँ।

उन स्नातकों को बधाई देता हूँ, जो उपाधि प्राप्त करने के लिए यहां एकत्र हुए हैं—विशेषतः उन्हें जो अब यहां का शिक्षण समाप्त कर, गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने जा रहे हैं। अब तक ऐसा था कि आप लोगों को कम या अधिक दूसरों के आदेश पर चलना पड़ता रहा, बहुत ही कम मौकों पर आपको स्वयं अपना चुनाव करना पड़ा होगा। परंतु

सर्वादय जगत

आज से बात बदल जाएगी और आपके भावी जीवन को प्रभावित करने वाले अधिकतर निर्णय आपको ही लेने होंगे। उत्तम शिक्षण की जो कसौटियां हैं, उनमें से एक यह भी है कि वह भावी जीवन विवेकपूर्वक चुनने-गढ़ने की क्षमता पैदा करे!

हमारे देश में, जहां कि चारों ओर अभाव ही अभाव है, आपको अपने मनोनुकूल मार्ग चुनने की अधिक स्वतंत्रता नहीं है। ऐसे कोई चुनाव आप करना चाहेंगे तो आपको तीव्र प्रतिद्वंद्विता का भी सामना करना पड़ेगा! फलतः आप में से बहुतों को अपेक्षाकृत कम रुचिकर व्यवसाय चुनने पड़ सकते हैं। किन्तु इससे निराश नहीं होना चाहिए। संसार में बड़ी संख्या में ऐसे स्त्री-पुरुष हैं जो अपनी रुचि से अलग व्यवसाय चुनते हैं, फिर भी ऐसा नहीं लगता कि उनका चुनाव अच्छा नहीं हुआ! अतः आपने जो कुछ चुना या चुनेंगे, उसमें आपको सफलता मिले, ऐसी मेरी शुभकामना है।

व्यवसाय के रूप में आपने जो कुछ भी चुना हो—उसके बावजूद आप में से प्रत्येक को अपने जीवन में एक और चुनाव भी करना ही होगा। शिक्षा का उद्देश्य ज्ञान, प्रशिक्षण आदि तो है ही, शिक्षा का एक दूसरा सर्वमान्य उद्देश्य भी है—मानव को मानव बनाना; उत्तम मानव बनाना। यह अत्यन्त ही कठिन कार्य है। मनुष्य का पर्यावरण समझने और बदलने के लिए बहुत कुछ किया गया है, परंतु मनुष्य को समझने और बदलने के लिए बहुत ही कम काम किया गया है।

प्राचीन काल में हमारे यहां बिलकुल ही दूसरी बात थी। पर्यावरण को नश्वर अथवा असत् माना जाता था। उसे समझना और उसमें परिवर्तन करना आवश्यक था और सो भी केवल उतना कि जितना मनुष्य की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आवश्यक था। सत् था स्वयं मनुष्य! इस बात पर पूरा जोर दिया जाता था कि मनुष्य इस बात को समझे कि वह क्या है और कौन है? यह

ज्ञान-प्राप्ति का भी और आनन्द-प्राप्ति का भी उद्देश्य माना जाता था। दुर्भाग्य है कि मानवीय संस्कृति अथवा आत्मोन्नति आज अनुत्पादक शाब्दिक परिपाटी भर रह गयी है। उसके साथ कुछ बाह्य शारीरिक क्रियाएं भी जुड़ गयी हैं। उनके द्वारा न तो मुक्ति की प्राप्ति हो सकती है और न सत्य का दर्शन। सच्ची मानवता की ओर बढ़ने का मानवीय लक्ष्य उससे पूरा नहीं होगा।

पूर्व और पश्चिम में भीतरी और बाहरी, भौतिक और आध्यात्मिक ज्ञान को जोड़ने का, दोनों के बीच समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न भी किया जा रहा है। सभी अद्वैत दर्शनों के मूल में यही बात है। ऐसे ज्ञान का विकास हो कि जिसमें न तो भौतिकवाद की उपेक्षा हो और न अध्यात्मवाद की! दोनों का सच्चा समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न हो।

ऐसा होने पर शिक्षा अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त कर सकेगी और मनुष्य तथा उसके पर्यावरण, दोनों के निर्माण का अपना कर्तव्य पूरा कर सकेगी! तभी मानव की आंतरिक और बाह्य क्रियाएं परस्पर संबद्ध रह सकेंगी और दोनों एक ही लक्ष्य की ओर बढ़ सकेंगी। आज तो दोनों के बीच कोई तर्कसंगत संबंध ही नहीं है। आज धर्म मनुष्य से कहता है कि वह केवल विश्वास के आधार पर चले। 'आत्मा' के विज्ञान से उसका कोई आंतरिक संबंध नहीं है। धर्म अपने अधिकार के कारण, न कि विवेक के कारण जो संबंध स्थापित कर सका है, उतना भर ही संबंध गिना जाता है। कहीं-कहीं विरल मामलों में, किसी व्यवसाय में लगा आध्यात्मिक दृष्टि से विकसित कोई व्यक्ति अपने व्यक्तिगत अनुभवों में भौतिकता और आध्यात्मिकता के बीच सामंजस्य स्थापित कर लेता है। किन्तु उसे आज झक्की ही माना जाता है।

गांधीजी ने राजनीति को आध्यात्मिकता की दिशा में ले जाने की आवश्यकता पर जोर दिया था, परंतु उसका कोई व्यावहारिक रूप उभर नहीं सका। गांधी के भारत में भी राजनीति का शिक्षण आध्यात्मिक शिक्षण से

भिन्न माना जाता है और दोनों के बीच कोई तर्कसंगत पारस्परिक संबंध नहीं माना जाता। आज कोई नहीं जानता कि 'अध्यात्मिकृत' राजनीति का स्वरूप कैसा होगा और उसे व्यवहार में कैसे लाया जा सकेगा। आज सबसे प्रमुख और विशिष्ट वस्तु बनी है— राष्ट्रसत्ता, जो मेरी दृष्टि से मानवता के लंबे इतिहास में बनी सबसे भयंकर संस्था है।

ऐसा नहीं है कि कोई भी चतुर राजनीतिज्ञ नैतिकता या आध्यात्मिकता की बात नहीं करता है। लेकिन हरेक की नैतिकता या आध्यात्मिकता भिन्न-भिन्न होती है। आध्यात्मिकता से राजनीति का संबंध-विच्छेद आश्चर्यजनक है! कारण, जैसा कि रिचर्ड क्रॉसमैन ने कहा है : “यदि हम गहराई से देखें तो सभी राजनीतिक निर्णयों का कोई नैतिक आधार होता ही है।” जब तक 'नैतिक मनुष्य और अनैतिक समाज' के बीच की यह खाई दूर नहीं की जाएगी और उसी आधार पर शिक्षण नहीं दिया जायेगा, तब तक इस त्रासदी से मुक्ति सम्भव नहीं है। नैतिकता या आध्यात्मिकता का परलोक से नहीं, समाज के व्यावहारिक जीवन से नाता है। इस संतुलन के बगैर मानवीय हितों और मानव के विकास में भारी बाधा पहुंचती रहेगी।

आप लोगों ने यहां जिस-जिस ज्ञान का अर्जन किया है, उसके भीतर अपनी-अपनी शुद्ध आंतरिक नैतिकता विद्यमान है। कोई भी विज्ञान, फिर वह भौतिक हो या सामाजिक, यदि शुद्ध सत्य पर अथवा सत्य के परीक्षण के परिष्कृत साधनों पर खरा नहीं उतरता है तो उसका विकास नहीं हो सकता। अविकसित विज्ञान जब समाज पर लागू किया जाता है तो समाज की आंतरिक नैतिकता टूट जाती है। फिर विज्ञान आचार नीति के परे हो जाता है और तब नैतिक ही नहीं, अनैतिक कामों के लिए भी उसका उपयोग होने लगता है। यही वह बिन्दु है, जिसे विज्ञान भी और समाज भी कैसे सुलझाता है—यह देखना है। विज्ञान क अनैतिक उपयोग करने वाले समूह को हानि पहुंचाता है। नैतिकता अथवा

सामाजिक कर्म के बीच लंबे समय तक टिक सकने वाला कोई पारस्परिक संबंध स्थापित किया जा सके और समूह या समाज पर उसके भौतिक परिणाम देखे जा सकें तो 'अनैतिक समाज' के लिए नैतिकता की चिन्ता कितनी अनिवार्य है, यह पता चलेगा। ऐसा लग सकता है कि इसका अर्थ 'भौतिकवाद' के आगे घुटने टेक देना होगा परंतु वस्तुस्थिति इसके सर्वथा विपरीत है। नैतिकता और भौतिकता के बीच समन्वय स्थापित करना और दोनों के बीच जो खाई है, उसे पाटना आज की चुनौती है। आज नैतिकता की कसौटी नैतिकता के प्रमाण से की जाती है। भौतिकता से उसका कोई संबंध नहीं रहता। मैं जिस मार्ग से ज्ञान के विकास की कल्पना करता हूं, उसमें नैतिकता और भौतिकता के बीच युक्तिपूर्ण सामंजस्य स्थापित किया जायेगा और आज नैतिक पुरुष की दृष्टि में भौतिक पदार्थों के लिए जो अवहेलना है, वह दूर हो जायेगी और 'भौतिकवादी' पुरुष की दृष्टि में नैतिकता के संबंध में जो अनादर या उपेक्षा है, वह भी दूर हो जायेगी। जब तक भौतिकता और आध्यात्मिकता को जोड़ने वाले शिक्षण और ज्ञान की व्यवस्था नहीं होती, तब तक आपके सामने, जो जीवन-यात्रा की देहली पर खड़े हैं, यह प्रश्न खड़ा ही रहेगा कि अपने व्यक्तिगत जीवन और अपने बाहरी कार्य-कलापों का अपने आध्यात्मिक और नैतिक विचारों के साथ कैसे सामंजस्य स्थापित किया जाए। आपके सामने प्रश्न यह है कि आप खंडित व्यक्तित्व वाले पुरुष बनेंगे अथवा अखंडित व्यक्तित्व वाले?

विज्ञान द्वारा स्वीकृत साधनों के अनुसार मैं इस बात को सिद्ध भले ही न कर सकूं, परंतु मेरा विश्वास है कि यदि आप अपने व्यक्तिगत जीवन में सदाचार को जैसा ऊंचा स्थान देते हैं, वैसा ही ऊंचा स्थान उसे आप अपने सार्वजनिक या सामाजिक जीवन में दें तो आप कहीं उत्तम और कहीं अधिक उपयोगी अर्थशास्त्री, वकील, डॉक्टर, इंजीनियर, प्रशासक, अध्यापक, राजनीतिज्ञ

अथवा कुछ भी बन सकते हैं। भले मैं इस बात को भी सिद्ध न कर सकूं फिर भी कहूंगा कि आपने ऐसा किया तो आप न केवल सामाजिक हित में अधिक योगदान करेंगे, बल्कि अपने देश की सच्ची सेवा कर संसार के सामने अपना सिर ऊंचा कर सकेंगे। ऐसा करने से आपको व्यक्तिगत लाभ भी होगा। अधिक प्रसन्नता और शांति मिलेगी, तन भी स्वस्थ रहेगा और मन भी! आपकी भावी संतति भी भौतिक दृष्टि से अधिक सुखी होगी। मनुष्य केवल भोजन करने के लिए जीवित नहीं रहता है, बल्कि वह अपने भीतर की अधिक सूक्ष्म और गहरी आकांक्षाओं की तृप्ति भी चाहता है। समय-समय पर आपके समक्ष गंभीर समस्याएं खड़ी होंगी; कभी-कभी खिंचाव इतना तीव्र होगा कि आपको लगेगा कि आप टूटे जा रहे हैं। ऐसा क्षणों में मार्गदर्शन के लिए आपको दूर जाने की आवश्यकता नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति के अंतःकरण में एक छोटी-सी शांत ध्वनि होती है। अंतुर्मुख बनकर, शांत होकर ध्यानपूर्वक आप आत्मा की उस आवाज को सुनिए। इससे उत्तम कोई दूसरा मार्गदर्शक नहीं हो सकता।

गत कई वर्षों से शांति के प्रश्न से मेरा सरोकार गहरा होता गया है। आप जानते ही हैं कि आज विज्ञान व परमाणु-युग में सबसे नाजुक प्रश्न शांति का ही है। मेरी दृष्टि से विश्वविद्यालय ही सबसे उपयुक्त स्थान है, जहां शांति के प्रश्न पर अत्यन्त गंभीरता से अध्ययन, चिन्तन तथा मनन होना चाहिए। परमाणु शस्त्रों की विभीषिका देखकर सारा विश्व भयभीत है और सच्चे हृदय से शांति की कामना करता है। फिर भी क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है कि युद्ध के साधनों और उपकरणों के शोध के लिए अरबों-खरबों रुपये खर्च किए जाते हैं? शांति के शोध के लिए कौन, कितना पैसा खर्च करता है? आज हमारे युवक युद्ध और समर-क्षेत्र में वीरता के विचारों से इतने ओतप्रोत हैं कि मैं कह नहीं सकता कि आप युवक और युवतियों शांति की मेरी बातों के बारे में क्या सोचेंगे।

पर, मेरे युवा मित्रों, मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि युद्ध अथवा शांति का प्रश्न मेरे और मेरी पीढ़ी की अपेक्षा, आपके और आपकी पीढ़ी के लिए कहीं अधिक सामयिक है। और यह भी कहें कि आप इस प्रश्न का कैसा उत्तर देते हैं, उस पर ही आपका और आपके देश का भविष्य निर्भर करता है।

मैं शांति में दिलचस्पी रखता हूँ तो वह इसलिए नहीं कि मैं गांधीवादी हूँ। गांधीजी तो स्वयं कह गये हैं कि 'गांधीवाद' जैसी कोई चीज नहीं है। न तो उन्होंने कोई वाद चलाया, न सम्प्रदाय खड़ा किया और न कोई विचारधारा ही स्थापित की। वे तो सत्य के शोधक थे, और जैसा कि प्रत्येक सत्यशोधक को करना चाहिए, वे सतत् सत्य के प्रयोग करते रहे, उससे शिक्षा ग्रहण करते रहे। हां, वे कुछ विशिष्ट जीवन-मूल्यों में विश्वास करते थे। उनकी हत्या को अभी थोड़े ही दिन बीते हैं। फिर भी अभी से हमारे कुछ राजनीतिक नेता, जिन्हें जनता के नाम पर लोकसभा में बोलने का अधिकार मिला है, गांधीजी द्वारा प्रतिष्ठित मूल्यों को उनकी 'झंख' कहने लगे हैं और शांति प्रयासों को राष्ट्रीय अपराध बताने लगे हैं। यह उत्तरोत्तर बढ़ने वाले युद्ध ज्वर का संकेत है। यह केवल उन्हीं की चिन्ता का विषय नहीं है, जिन्हें 'गांधीवादी' कहा जाता है, अपितु उन सब की चिन्ता का विषय है, जो शांति की कामना करते हैं और उसकी खोज करते हैं।

शांति में मेरी दिलचस्पी इसलिए है कि मैं मानव हूँ। मानव होना बहुत कठिन है। हम लोग मानव के सिवा सब कुछ हैं— भारतीय हैं, हिन्दू हैं, मुस्लिम हैं, ईसाई हैं, ब्राह्मण हैं, लिंगायत हैं, कलाकार हैं, विद्वान हैं, वैज्ञानिक हैं, समाजवादी हैं, साम्यवादी हैं, बस मानव नहीं हैं। मानव बनने के मानी यह नहीं कि धर्म, विज्ञान, राष्ट्रीयता या विचारधारा से इनकार कना, उसके मानी हैं इनके परे जाना, इन बाह्य आवरणों को हटाकर असली मानव को पहचानना। मानव बनने का मतलब है मानवमात्र को भाई

सर्वादय जगत

मानना, विश्व-नागरिक बनना, हर मानव के जीवन, सुख और स्वातंत्र्य की कामना करना। मानव बनने का अर्थ है अन्याय और अत्याचार का मुकाबला करना, युद्ध का निषेध करना तथा उसके नैतिक विकल्प दूढ़ना। मानव चाहे जिस धर्म और विचारधारा का हो, विज्ञान और तकनीक में, समृद्धि एवं तथाकथित संस्कृति और सभ्यता में कितना भी आगे बढ़ा हुआ क्यों न हो, वह उसी हद तक सभ्य माना जायेगा जिस जद तक वह युद्ध से शांति की ओर अग्रसर होगा।

शांति मेरे लिए अपरिहार्य है क्योंकि मुझे विश्वास है कि युद्ध से कोई समस्या हल नहीं होती। मुझे मालूम है, जैसा कि हर समझदार आदमी को मालूम होना चाहिए कि भारत-पाक विवाद या भारत-चीन विवाद युद्ध से कभी हल नहीं हो सकता। अत्यन्त विनाशकारी युद्ध के बाद भी शांति करनी ही होती है, यह मैं भी और आप भी जानते ही हैं। महाभारत का अंत भी तो शांति पर्व से ही होता है न! मित्रों! युद्ध मनुष्य की स्थाई अवस्था नहीं है। वह अवस्था तो शांति की ही है। युद्ध एक ऐसी महामारी है, जो मेरे देश का भी विनाश करेगी, पाकिस्तान का और चीन का भी विनाश करेगी। शांति चाहिए ताकि हम विकास कर सकें, खा-पी और पहन-ओढ़ सकें, अपने बच्चों को पढ़ा सकें, बीमारी और अकाल मृत्यु का मुकाबला कर सकें। शांति के लिए काम करना कायरता नहीं है। इसके लिए सर्वोच्च नैतिक तथा शारीरिक वीरता की जरूरत होती है। इतिहास बताता है कि युद्ध करना आसान है, शांति स्थापित करना अत्यन्त कठिन।

शांति का प्रश्न आज दो स्तरों से सुलझाने का प्रयास किया जा रहा है— राजनीतिक स्तर पर तथा मानवीय स्तर पर। संयुक्त राष्ट्र संघ और सरकारें राजनीतिक स्तर पर काम कर रही हैं, अधिकांश शांति-आंदोलन भी इसी स्तर पर काम कर रहे हैं। दूसरी ओर पश्चिम के कुछ शांतिवादी तथा

इस देश के गांधीवादी मानवीय स्तर पर काम कर रहे हैं। ये दोनों एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न नहीं हैं। इन दोनों के बीच काफी हेल-मेल होता रहता है। पर एक स्पष्ट भेद यह है कि राजनीतिक स्तर पर काम करने वाले सभी लोग व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में अनिवार्यतः अहिंसा-निष्ठ नहीं हैं, जबकि मानवीय स्तर पर काम करने वाले सभी अहिंसा-निष्ठ हैं। गांधीजी राजनीतिक और मानवीय, दोनों स्तरों से काम करने वाले शांतिवादी कार्यकर्ता के उत्तर उदाहरण थे। मैं इसकी तरफ खास तौर पर ध्यान दिलाना चाहता हूँ क्योंकि राजनीतिक स्तर से किये जाने वाले प्रयासों का अक्सर मानवीय प्रयासों से मेल नहीं बैठता है। मैं अपनी बात और भी साफ करूँ तो कहूँगा राजनीतिक स्तर पर जवाहरलाल नेहरू भारत की विदेश-नीति के रचयिता थे और आज भी मूलतः उन्हीं की नीति का अनुसरण किया जा रहा है। उस नीति का प्रमुख लक्षण था तटस्थता। यह इसलिए ताकि भारत अंतर्राष्ट्रीय मसलों पर स्वतंत्र रूप से विचार कर सके तथा शांति का साधन बन सके। लेकिन ठोस अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं के संदर्भ में वह नीति अपनी कमजोरी को छिपाने की ढाल बन गयी और उसने किसी अंश में आक्रमण को प्रोत्साहन ही दिया। सरकार महाशक्तियों को अप्रसन्न करने से डरती-सी दीख पड़ती है। महात्मा गांधी के अद्वितीय नेतृत्व और व्यक्तित्व के कारण स्वतंत्र भारत को एक असाधारण राष्ट्र के रूप में देखा जाने लगा था और उससे यह अपेक्षा की जाती थी कि वह युद्धरहित जगत के निर्माण में विश्व का नेतृत्व करेगा। यह ऐसी सम्पत्ति थी, जो सेना के कई डिवीजनों और बाहरी सहायता के करोड़ों डॉलर से अधिक मूल्यवान थी। लेकिन लगातार ऐसी बातें होती गयीं कि हमारी वह सम्पत्ति छीजती गयी। चाहे कश्मीर का प्रश्न हो कि हंगरी का कि तिब्बत का कि गोवा का, हम बौने साबित हुए। पेरिस में निकोलास नोबाकोव के घर पर आल्बेयर कामू ने मुझसे जो कहा वे शब्द

अभी तक मेरे कानों में गूँज रहे हैं : “मिस्टर नेहरू, जो कि हमारे पूज्य पुरुष थे, उन्होंने हम सबको निराशा के गर्त में पटक दिया!” पंडितजी ने बाद में यह स्वीकार भी किया कि हंगरी में जो कुछ हुआ था वह पश्चिमी साम्राज्यवादियों की चाल भर नहीं, बल्कि एक विशुद्ध राष्ट्रीय विप्लव था। लेकिन राजनीति में तो मौका ही अहमियत रखता है। वह चूका तो आपने अपनी हैसियत खो दी।

अक्सर यह प्रश्न उठाया जाता है कि क्या तिब्बत को बचाने के लिए भारत कुछ कर सकता था? मुझे पूरा विश्वास है कि कर सकता था। स्मरण रहे कि अकेला पड़ जाने के बावजूद तिब्बत चीनी आक्रमण का प्रश्न संयुक्त राष्ट्रसंघ असेंबली में नवंबर 1950 में अल सल्वाडोर द्वारा उठवाने में सफल हो सका था। लेकिन जब जनरल कमेटी ने इस प्रस्ताव पर विचार करना आरम्भ किया, तब भारत के प्रतिनिधि जाम साहब की प्रेरणा तथा इंग्लैंड के प्रतिनिधि केनिथ यंगर के कारण प्रस्ताव पेश कराने वाले ने उसे वापस ले लिया। यह इसलिए हुआ कि भारत ने कमेटी को आश्वासन दिया था कि इस समस्या का शांतिपूर्वक हल हो जायेगा। भारत ने तब यदि इस प्रस्ताव का समर्थन किया होता तो इसमें शक नहीं कि असेंबली ने प्रस्ताव पास कर लिया होता। उस समय चीन कोरिया के मामले में उलझा हुआ था। चीन-विषयक जानकार बताते हैं कि तिब्बत को तब थोड़े भी शस्त्र दिये जाते तो चीन ठिठक जाता और तिब्बत को चीन का मुकाबला करने के लिए आवश्यक समय मिल जाता। यदि यह प्रस्ताव पारित हो जाता तो तिब्बत स्वतंत्र राष्ट्र के तौर पर मान्य भी हो जाता। लेकिन जवाहरलालजी को अपने द्वार पर शीतयुद्ध के आ जाने का भय था। लेकिन इस भय से हुआ यह कि उन्होंने उत्तर से उष्णयुद्ध के द्वार खोल दिये। यह प्रश्न अभी तक कायम है और भारत को चाहिए कि वह अपनी भूमिका सुधार ले। यही शांति की असली नीति है। मैं इस बात से इनकार

करता हूँ कि नैतिक दृष्टि से जो सही है, उस पर चलने से किसी राष्ट्र को हानि पहुंच सकती है। दूसरी बात यह है कि राष्ट्र का असली हित क्या है, यह तय करना आसान नहीं है। अलग-अलग नेता तथा पक्ष राष्ट्रहित की अलग-अलग परिभाषा करते पाये जाते हैं। लेकिन उपरोक्त मामले में हम देखते हैं कि राष्ट्र का हित जिसमें माना गया था, उससे राष्ट्र का अहित ही हुआ। इस राष्ट्र ने तथा उसके महान नेता ने अपना नैतिक कद तथा अधिकार खोया, जो अपने में ही एक अपरिमित हानि थी। शांति की शक्तियां कमजोर हुईं।

पिछले कुछ महीनों में देश के भीतर और तटस्थता की नीति पर खूब चर्चा चली है। भिन्न-भिन्न लोगों ने भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से इस पर आक्रमण किया है। मुझे लगता है कि आक्रमण और समर्थन, दोनों अवास्तविक हुए। आज तो तटस्थता शब्द ही निरर्थक हो गया है। जब दो निश्चित परस्पर-विरोधी गुट थे, तब इस शब्द का कोई अर्थ भी था और वह शांति की नीति का सूचक भी था। अब दुनिया में दो ही राष्ट्र-समूह नहीं हैं, कई हो गये हैं। अब तो हर राष्ट्र अपनी स्वतंत्र वैदेशिक नीति चलाने की तैयारी में है। जगत की इस नई परिस्थिति के कारण पहले से भी अधिक परिष्कृत नीति अख्तियार करनी होगी। शांति और न्याय को ध्यान में रखा जाये तो हमारी वैदेशिक नीति न हमें केवल शक्ति देगी, बल्कि विश्व-शांति का ताना-बाना भी संयुक्त राष्ट्र संघ के भीतर और बाहर, बुनने में सहायक होगी।

भारत-पाक संबंध हमें बहुत परेशान करते हैं। पाकिस्तान खुले तौर पर शस्त्र-शक्ति से वह लेना चाहता था, जो कूटनीति से उसे नहीं मिल सकता है। जिसे वह हथियाना चाहता है, उसके लिए उसके पास कोई कानूनी या नैतिक अधिकार नहीं है। फिर भी मैं मानता हूँ कि यह कहना कि अब कश्मीर कोई सवाल रह नहीं गया है, राजनीतिक दृष्टि से खतरनाक और नैतिक दृष्टि से गलत है। प्रश्न अब भी कायम है और वह प्रश्न है

भारत सरकार तथा कश्मीर की जनता के बीच! यह प्रश्न केवल न्याय और व्यवस्था के प्रश्न के तौर पर हल नहीं होगा। यह एक राजनीतिक समस्या है। इसके लिए एक मेज पर बैठने तथा परस्पर समाधानकारक हल निकालने की बुद्धिमत्ता, दोनों को दिखानी होगी। भारत से कश्मीर या उसके किसी हिस्से को अलग करने वाले फार्मूले की सफलता संभव नहीं है। मैं संसार की ऐसी एक भी सत्ता की कल्पना नहीं कर सकता, जो कश्मीर को भारत से पाकिस्तान को दिला दे, और न मैं यह ही मान सकता हूँ कि पाकिस्तान कश्मीर को बलपूर्वक भारत से छीन सकता है! तो इस प्रकार की मर्यादाएं हैं, जिनकी परिधि के भीतर ही कोई समुचित और मैत्रीपूर्ण हल ढूंढना होगा। कश्मीरी नेताओं को यह स्वीकार करना होगा कि कश्मीर भारत का एक अंग रहेगा और भारत सरकार को यह समझना होगा कि दमन से किसी प्रजा पर कोई राज्य-पद्धति लादी नहीं जा सकती।

किसी भी युद्ध की सफलता या विफलता गांधी वालों को आनंद नहीं देती। हमें तो हर नर-संहार तथा विद्वेष और वैर-भाव के बढ़ने से दुख ही होता है। और इसका गहरा अफसोस भी होता है कि हम युद्ध को न तो टाल सके, न रोक सके।

आंतरिक हिंसा के विस्फोट के मामलों में गांधी वालों ने अपने-आपको कभी लाचार नहीं पाया। उनके बीच-बचाव के कारण संकट टले हैं, कुछ में संकट लंबा नहीं चल पाया अथवा परिणाम अधिक बुरे नहीं हो पाये। लेकिन अंतर्राष्ट्रीय हिंसा में, जहां भारत का सीधा संबंध रहा है, हम लोग लाचार दर्शकों से अलग कुछ नहीं रहे हैं। हमने युद्ध-ज्वर को कम करने का प्रयत्न जरूर किया है और समझौते के दरवाजे बंद न करने की सलाह भी दी है। लेकिन गांधी वालों को तो इससे अलग और आगे जाना होगा। फिर मैं यह भी कहता हूँ कि यह सारा विषय मुट्ठीभर गांधी वालों की नहीं बल्कि

सारे देशवासियों की चिन्ता का विषय बनना चाहिए। हम महात्मा गांधी को 'राष्ट्रपिता' कहकर सम्मानित करते हैं और उनके ही नेतृत्व में हमने अहिंसा से आजादी हासिल की है। तो क्या यह संभव नहीं है कि हम अपनी आजादी और इज्जत, अपनी अखंडता भी अहिंसा के रास्ते टिका सकें? यह सवाल सारे देश के लिए विचारणीय है, गांधी वालों के लिए यह विशेष रूप से।

मैं आप लोगों के सामने दो विचार पेश करना चाहता हूँ। ये नये भले न हों लेकिन पिछले तीन महीनों के आध्यात्मिक मनोमंथन से गुजरने के बाद मैं यहाँ पहुँचा हूँ कि राष्ट्र को अपनी शांति की खोज में उनसे कुछ सहायता मिलेगी, ऐसा मुझे लगता है।

मुझे यह पसंद नहीं है कि दुनिया भर के शांतिवादी, जिनमें गांधीवादियों को भी मैं शामिल करता हूँ, हालांकि मुझे इन दोनों के बीच के अंतर का पता है, अपने-आपको दूसरों के पापों का प्रायश्चित्त करने वालों की असहाय और उपहासास्पद परिस्थिति में रख लेते हैं। दूसरे लोग युद्ध पैदा करें और शांतिवादी उनका प्रतिकार सोचें, यह कोई भूमिका नहीं है। एक बिलकुल अतार्किक परिस्थिति है यह। जब तक शांतिवादी ऐसी बेतुकी परिस्थिति में रहेंगे तो, उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। महात्मा गांधी ने अवश्य कहा था कि यदि एक भी सच्चा सत्याग्रही हो तो वह सारे साम्राज्य के खिलाफ खड़ा हो सकता है। यह संभव है। लेकिन ऐसा सत्याग्रही अभी तक पैदा नहीं हुआ। मैं तो सामान्य मानवों की बात कर रहा हूँ, जो कम-से-कम इतने मानवीय हैं कि भाई को मारने वाले भाई के बीच रेखा खींच सकते हैं। यदि वे जन-जीवन के संचालन का भार दूसरों के हाथ में छोड़ दें तो भयमुक्त संसार का निर्माण करने में सफल नहीं हो सकते। युद्ध को समाप्त करने के लिए युद्ध की जड़ों में घुसना होगा। पश्चिम में शांत प्रतिकार, असहयोग अथवा विरोधी प्रदर्शनों पर ही अधिक ध्यान दिया गया है लेकिन युद्ध की

जड़ें तो मनुष्य के मन में हैं, उनकी शिक्षा-पद्धति में हैं, उनकी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संस्थाओं तथा पद्धतियों में हैं। गांधीजी के नेतृत्व की कृपा से हमने यह सब भलीभांति समझ लिया है। गांधीजी का रचनात्मक कार्यक्रम, शिक्षण-पद्धति में क्रांतिकारी परिवर्तन करने का उनका आग्रह, आर्थिक और राजनीतिक सत्ता के विकेन्द्रीकरण और जड़-मूल में जाने वाला लोकतंत्र ग्राम-राज्य! और स्वावलंबन तथा आत्मनिर्भरता पर उनका जोर, सादे जीवन के उनके नैतिक प्रयोग, सर्वधर्म समभाव आदि का उनका आग्रह—इन सबका उद्देश्य यही था कि हम हिंसा रहित विश्व का निर्माण करें।

लेकिन गांधीजी के बाद यह समग्रता जाती रही। विनोबाजी ने इस समग्रता को पकड़ने का फिर से प्रयास किया। किन्तु उसमें वह व्यापकता और समग्रता नहीं आ सकी। यह आंदोलन भारत के ग्रामों तक ही सीमित रहा। उसने नगरों को करीब-करीब अछूता छोड़ दिया, जबकि देश के शैक्षणिक, सांस्कृतिक और जनमत-निर्माण के, सरकार, व्यापार और उद्योग के केन्द्र शहरों में ही केन्द्रित होते गये हैं। दैनन्दिन सामाजिक प्रश्नों से अपने-आपको अलग रखने के कारण यह आंदोलन कोई स्वरूप न दे सका, न ले सका। ऐसा कहने में मैं अपने साथियों के साथ-साथ अपनी भी और देश की टीका भी कर रहा हूँ। यह आत्म विश्लेषण है। विचार करने की नई प्रेरणा मिले, ऐसी अपेक्षा मैं करता हूँ।

गांधी वालों के सामने एक जबरदस्त कर्तव्य उपस्थित हुआ है। गांधी आंदोलन को इस प्रकार विकसित करना होगा कि जिससे यह सार्वजनिक नीति एवं राष्ट्रीय जीवन के हर पहलू को प्रभावित कर सके। यह मुट्ठीभर गांधी वालों की ताकत से बाहर का काम है। सब लोग अपनी शक्ति इस प्रयत्न में नहीं लगायेंगे तो हमारा देश ऐसी दिशा में जा सकता है, जिसे कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति पसंद नहीं करेगा। जब तक अहिंसा के लिए

ऐसा सामूहिक आंदोलन नहीं किया जायेगा, जिसमें सामाजिक परिवर्तन और नव-निर्माण शामिल हों, तब तक ऐसी लोक-शक्ति जाग्रत नहीं हो सकेगी जो सार्वजनिक नीति और सार्वजनिक कार्यों को प्रभावित कर सके।

तो क्या गांधी वाले राजनीति में अधिक प्रत्यक्ष दिलचस्पी लें? कुछ गांधी वालों ने भी समय-समय पर इसका समर्थन किया है। एक गांधीवादी राजनीतिक दल खड़ा किया जाए, ऐसा सुझाव भी है। गांधीजी इस सवाल पर दूसरे ढंग से सोच रहे थे। उन्होंने अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के लिए अपना वह प्रसिद्ध मसविदा तैयार किया था, जिसमें उन्होंने कहा था कि कांग्रेस का विघटन करके उसे लोक सेवक संघ के में 'पुष्पित' किया जाए।

गांधीजी फल के बजाय मूल की ओर ध्यान देते थे। लोकसभा में जाने के बजाय वे जनता के बीच जाने की बात सोचते थे। आचार्य विनोबा उन्हीं के रास्ते पर चल रहे हैं परंतु दोनों में कुछ अंतर भी है। गांधीजी की कल्पना का लोक सेवक संघ शीघ्र ही जन-आंदोलन के रूप में विकसित हो सकता था। वह जन-प्रतिनिधियों के मत को तो प्रभावित करता ही, उनके चुनाव पर भी प्रभाव डालता था। हमें स्मरण रखना चाहिए कि लोक सेवक संघ के मुख्य कार्यों में गांधीजी ने मतदाताओं की भर्ती और उनका शिक्षण करना शामिल किया था। गांधीजी होते तो वे ग्रामराज के आधार पर जनांदोलन खड़ा करते। दुर्भाग्य की बात है कि गांधीजी के बाद हमने इस कार्यक्रम की उपेक्षा कर दी, उसे सरकार पर छोड़ दिया और सरकार ने उसे पंचायती राज के भद्दे रूप में अमल में लाना शुरू किया।

मैं आपसे और उच्च शिक्षण के अन्य सभी केन्द्रों से निवेदन करना चाहता हूँ कि क्या आपका अपने प्रति, देश के प्रति, मानवता के प्रति यह कर्तव्य नहीं है कि गांधीजी के जीवन और उपदेश की ओर अधिक ध्यान दें और आज की समस्याओं पर गांधी-दृष्टि से विचार करें? क्या आप यह

नहीं मानते कि युद्ध एक अभिशाप है और उसका उन्मूलन होना चाहिए? क्या आप यह स्वीकार नहीं करते कि युद्ध देश और दुनिया के लिए विनाशकारी होगा और राष्ट्र निर्माण के लिए हमें स्थाई शांति की आवश्यकता है? इसलिए गांधी वालों की ही तरह क्या आपका यह कर्तव्य नहीं है कि शांति का शोध करें और विश्व को युद्धहीनता की ओर ले जाएं? यदि हमारे बुद्धिजीवी इस चुनौती को स्वीकार करते हैं तो मुझे कोई संदेह नहीं कि अहिंसा को एक व्यर्थ की खामख्याली नहीं माना जायेगा। वह राष्ट्रपिता के कारण सहन नहीं की जाएगी। ऐसा नहीं होगा कि व्यक्तिगत, सार्वजनिक जीवन में दूसरी बातों के लिए उसकी उपेक्षा की जाए। अहिंसा एक महान शक्तिशाली और क्रांतिकारी विचारधारा का स्वरूप ग्रहण करेगी और राजनीति तथा संसद पर अपना प्रभाव डालेगी। जनांदोलन के लिए जिस प्रेरणा की अत्यन्त आवश्यकता होती है, वह भी अहिंसा के रास्ते ही प्रकट होगी।

प्रत्येक विश्वविद्यालय में जहां आज गांधीजी के नाम पर व्याख्यानमालाएं चलती हैं, उनकी जगह सभी विश्वविद्यालयों में अहिंसा का गंभीर अध्ययन हो और उसका सैद्धांतिक और अनुभवसिद्ध शोध हो। हमारे पूर्वजों ने, विशेषतः जैन-सम्प्रदाय वालों ने, व्यक्तिगत जीवन में अहिंसा को अमल में लाने के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रयोग किये हैं। वे ऐसी बारीकी तक गये कि जिसकी केवल कल्पना की जा सकती है। लेकिन जब सामाजिक जीवन में अहिंसा का प्रश्न आया तो वे नाकाफी साबित हुए। युद्धों को रोकने, उन्हें समाप्त करने के संबंध में वे कुछ न कर सके और न आर्थिक शोषण, गैर-बराबरी की कोई अहिंसक दिशा खोज सके।

आज के दिन, आपको संबोधित करते हुए मैं इस गहन बौद्धिक चुनौती को आपको सौंपता हूँ। सच्ची शिक्षा शांति का सर्जन करने से अलग कुछ कैसे कर सकती है!

(29, नवंबर 1965 को मैसूर विश्वविद्यालय में दीक्षांत भाषण) □

30 नवंबर : गीता-जयन्ती

विद्यार्थियों के प्रति

□ गांधी

विद्यार्थी और गीता

उस दिन बातचीत के दौरान में एक पादरी मित्र ने मुझसे पूछा कि 'यदि भारत सचमुच आध्यात्मिक दृष्टि से उन्नत देश है, तो यह क्या बात है कि मैं ऐसे थोड़े से ही विद्यार्थी पाता हूँ जिन्हें अपने धर्म का, भगवद्गीता तक का कुछ भी ज्ञान हो।' इस कथन के समर्थन में उन मित्र ने, जो स्वयं एक शिक्षाशास्त्री हैं, मुझसे कहा कि 'मुझसे जो विद्यार्थी मिलते हैं उनसे मैं यह जरूर पूछ लेता हूँ कि तुम्हें अपने धर्म का या भगवद्गीता का ज्ञान है या नहीं। उनमें से बहुत ज्यादा लोगों को ऐसा कोई ज्ञान नहीं होता।'

इस अवसर पर मेरा इस निष्कर्ष पर विचार करने का इरादा नहीं है कि चूँकि कुछ छात्रों को अपने ही धर्म का ज्ञान नहीं है, इसलिए भारत आध्यात्मिक दृष्टि से उन्नत देश नहीं है। मैं इतना ही कहूँगा कि छात्रों में धार्मिक पुस्तकों के अज्ञान का जरूरी तौर पर यह अर्थ नहीं है कि विद्यार्थी जिन लोगों में से हैं उनमें कोई धार्मिक जीवन या आध्यात्मिकता ही नहीं है। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि सरकारी शिक्षा-संस्थाओं से निकलनेवाले अधिकांश विद्यार्थी किसी भी धार्मिक शिक्षा से वंचित रहते हैं। पादरी महाशय के वचनों का सम्बन्ध मैसूर के छात्रों से था और मुझे यह देखकर कुछ पीड़ा हुई कि मैसूर के विद्यार्थियों को भी राज्य की पाठशालाओं में धार्मिक शिक्षा नहीं मिलती।

मुझे यह भी मालूम है कि एक ऐसी विचारसरणी है, जो सार्वजनिक पाठशालाओं में केवल धर्मनिरपेक्ष शिक्षा देने में ही विश्वास रखती है। मैं यह भी जानता हूँ कि भारत जैसे देश में, जहाँ संसार के अधिकांश धर्मों का प्रतिनिधित्व है और जहाँ एक ही धर्म में इतने अधिक सम्प्रदाय हैं, धार्मिक शिक्षा की व्यवस्था करने के बारे में अवश्य कठिनाई होगी। परन्तु यदि भारत को रूहानी दिवालियापन घोषित नहीं करना है, तो उसके युवक-युवतियों की धार्मिक शिक्षा कम-से-कम उतनी जरूरी अवश्य मानी जानी चाहिए जितनी लौकिक शिक्षा। यह सच है कि धार्मिक पुस्तकों का ज्ञान और धर्म का ज्ञान दोनों एक ही चीज नहीं हैं। परन्तु हमें धर्म नहीं मिल सकता हो तो अपने लड़के-लड़कियों को उससे उपरान्त का सर्वोत्तम देकर ही सन्तोष करना होगा; और ऐसी शिक्षा स्कूलों में दी जा सके या न दी जा सके, फिर भी वयस्क छात्रों को अन्य विषयों की भाँति धार्मिक मामलों में भी स्वावलम्बन की कला सीख लेनी चाहिए। जैसे उनकी अपनी वाद-विवाद सभाएँ और अब कताई-मण्डल हैं, वैसे वे अपनी धार्मिक कक्षाएँ जारी कर सकते हैं।

शिमोगा में कालेजियट हाईस्कूल के विद्यार्थियों में भाषण देते समय सभा में पूछताछ करने पर मुझे पता लगा कि सौ या अधिक हिन्दू लड़कों में से मुश्किल से आठ ऐसे थे जिन्होंने भगवद्गीता पढ़ी थी। इस प्रश्न के जवाब में कि जिन थोड़े से विद्यार्थियों ने गीता पढ़ी थी, उनमें क्या कोई ऐसा भी है जो उसे समझता हो, किसी ने अपना हाथ नहीं उठाया। पाँच या छह मुसलमान लड़कों में से सबने हाथ उठाकर कहा कि हमने कुरान पढ़ा है, परन्तु केवल एक ही कह सका कि मैं उसका अर्थ जानता हूँ। मेरी राय में गीता समझने के लिए बहुत ही आसान पुस्तक है। वह कुछ आधारभूत समस्याएँ जरूर उपस्थित करती है, जिनका हल बेशक

कठिन है। परन्तु मेरे मतानुसार गीता के साधारण अर्थ के बारे में कोई भूल नहीं हो सकती। समस्त हिन्दू सम्प्रदाय उसे प्रमाण मानते हैं। वह हर प्रकार की कट्टरता से मुक्त है। थोड़ी-सी जगह में वह सम्पूर्ण युक्तियुक्त नैतिक नियमावली दे देती है। उससे बुद्धि और हृदय दोनों को सन्तोष होता है। इस प्रकार वह दार्शनिक और भक्तिपूर्ण दोनों है। उसका प्रभाव सार्वत्रिक है। उसकी भाषा निहायत ही आसान है। फिर भी मेरे खयाल से उसका हर देशी भाषा में अधिकृत संस्करण होना चाहिए और अनुवाद इस प्रकार तैयार होने चाहिए कि उनमें बारीक सैद्धान्तिक चर्चा न आये और गीता की शिक्षा साधारण आदमियों की समझ में आ जाए। इस सुझाव का उद्देश्य किसी भी प्रकार यह नहीं है कि अनुवाद मूल ग्रन्थ का पूरक हो सकता है। कारण, मैं अपना यह मत दोहराता हूँ कि प्रत्येक हिन्दू लड़के और लड़की को संस्कृत जानना चाहिए। परन्तु अभी बहुत समय तक लाखों लोग संस्कृत के ज्ञान से विहीन रहेंगे। उन्हें संस्कृत न जानने के कारण भगवद्गीता की शिक्षा से वंचित रखना आत्मघातक होगा। *यंग इंडिया, 25-8-'27*

आप अपने मानपत्र में कहते हैं कि आप भी मेरी ही तरह रोज बाइबल पढ़ते हैं। मैं नहीं कह सकता कि मैं रोज बाइबल पढ़ता हूँ, परन्तु मैं यह कह सकता हूँ कि मैंने बाइबल को नम्र और प्रार्थनापूर्ण वृत्ति से पढ़ा है, और यदि आप भी बाइबल को उसी वृत्ति से पढ़ रहे हैं तो यह अच्छी बात है। लेकिन आपमें से ज्यादा लड़के तो हिन्दू होंगे; काश! आप मुझे कह सकते कि कम-से-कम आपके हिन्दू लड़के प्रेरणा प्राप्त करने के लिए नित्य भगवद्गीता पढ़ रहे हैं। कारण, मेरा विश्वास है कि संसार के समस्त महान धर्म न्यूनाधिक रूप में सत्य हैं। मैं 'न्यूनाधिक' इसलिए कहता हूँ कि हर चीज, जिसे मनुष्य का हाथ स्पर्श कर देता है, इसी कारण अपूर्ण बन जाती है कि मानव प्राणी अपूर्ण होते हैं।

सर्वादय जगत

पूर्णता एकमात्र ईश्वर का ही गुण है और वह अवर्णनीय है, और अनिर्वचनीय है। मैं यह अवश्य मानता हूँ कि प्रत्येक मानव प्राणी के लिए वैसा ही सम्पूर्ण बनना सम्भव है जैसा ईश्वर है। हम सबके लिए सम्पूर्णता की आकांक्षा रखना आवश्यक है। परन्तु जब वह सुखद अवस्था प्राप्त होती है, तब वह अवर्णनीय हो जाती है, उसकी व्याख्या नहीं की जा सकती। और इसलिए मैं सम्पूर्ण विनय के साथ स्वीकार करता हूँ कि वेद, कुरान और बाइबल भी ईश्वर के अपूर्ण शब्द हैं। और चूँकि हम अपूर्ण प्राणी हैं और तरह-तरह के विकारों से इधर-उधर विचलित होते हैं, इसलिए हमारे लिए ईश्वर का यह शब्द पूरी तरह समझना भी असम्भव है। इसीलिए मैं हिन्दू लड़के से कहता हूँ कि जिन परम्पराओं में वह पला है, उनकी जड़ उसे नहीं उखाड़ना चाहिए। इसी प्रकार मैं मुसलमान या ईसाई लड़के से भी कहता हूँ कि उसे अपनी परम्पराओं की जड़ नहीं उखाड़ना चाहिए। और इस प्रकार जहाँ मैं आपके बाइबल सीखने का और कुरान सीखने का स्वागत करूँगा, वहीं, यदि मुझमें आग्रह करने की शक्ति हो, तो मैं निःसन्देह आग्रह करूँगा कि आप सारे हिन्दू लड़के गीता सीखें। यह मेरा विश्वास है कि हम स्कूलों में लड़कों के आसपास जो अशुद्धता देखते हैं, जीवन-सम्बन्धी महत्त्व की बातों में जो लापरवाही पायी जाती है और जिस हलकेपन से विद्यार्थी-जगत जीवन के सबसे बड़े और बुनियादी सवालों के बारे में काम लेता है, उसका कारण उस परम्परा का उखड़ जाना है जिससे लड़कों को अब तक पोषण मिलता रहा है।

परन्तु कोई मुझे गलत न समझे। मेरी यह राय नहीं है कि सभी प्राचीन बातें इसीलिए अच्छी हैं कि वे प्राचीन हैं। मैं प्राचीन परम्परा के सामने ईश्वर-प्रदत्त बुद्धि-शक्ति को समर्पण कर देने के पक्ष में नहीं हूँ। कोई परम्परा कितनी ही पुरानी हो, यदि

उसका सदाचार के साथ मेल नहीं बैठता, तो वह देश का मुँह काला कर देने योग्य है। अस्पृश्यता प्राचीन परम्परा मानी जा सकती है, बाल-विधवापन और बाल-विवाह की संस्था को पुरानी परम्परा माना जा सकता है और इसी तरह बहुत-सी प्राचीन भयंकर मान्यताएँ और अंधविश्वासपूर्ण रिवाज भी माने जा सकते हैं। मेरे पास सत्ता हो तो मैं उनका एक सपाटे में सफाया कर दूँ। इसलिए जब मैं प्राचीन परम्परा का आदर करने की बात कहता हूँ, तो अब आप समझ गये होंगे कि मेरा क्या मतलब होता है। और चूँकि मुझे भगवद्गीता में वही ईश्वर दिखायी देता है जो बाइबल और कुरान में दिखायी देता है, इसीलिए मैं हिन्दू लड़कों से कहता हूँ कि वे भगवद्गीता से अधिक प्रेरणा प्राप्त करेंगे। कारण, अन्य किसी पुस्तक की अपेक्षा गीता उनके लिए अधिक अनुकूल होगी।

यंग इंडिया, 22-9-'27

मैं भगवद्गीता के श्रद्धापूर्ण अध्ययन के बराबर बलदायक और किसी चीज की कल्पना नहीं कर सकता और यदि विद्यार्थी यह याद रखें कि उन्हें संस्कृत के ज्ञान का या गीता के ज्ञान का भी दिखावा करने के लिए उसे नहीं सीखना है, तो उन्हें मालूम हो जायेगा कि वे उसे आध्यात्मिक शान्ति प्राप्त करने और अपने सामने आनेवाली नैतिक कठिनाइयाँ हल करने के लिए सीखते हैं। कोई भी मनुष्य, जो पूज्य भाव से उस पुस्तक के अध्ययन में प्रवृत्त होता है, राष्ट्र का और उस माध्यम से मानव-जाति का सच्चा सेवक बने बिना नहीं रह सकता। *यंग इंडिया, 3-11-'27*

गीता में कर्म का उपदेश है, भक्ति का उपदेश है और ज्ञान का उपदेश है। जीवन में इन तीनों का सामंजस्य होना चाहिए। परन्तु सेवा का उपदेश सबका आधार है। और जो लोग देश की सेवा करना चाहते हैं, उनके लिए इससे ज्यादा जरूरी और क्या हो सकता है कि वे उस अध्याय से आरम्भ करें जिसमें कर्म के उपदेश की मीमांसा की गयी

है। परन्तु यह आरम्भ आपको पाँच आवश्यक साधनाओं अर्थात् अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह और अस्तेय के साथ करना होगा। तभी, और केवल तभी, आप गीता का ठीक-ठीक अर्थ समझ सकेंगे। और फिर आप उसे पढ़ेंगे तो आपको उसमें अहिंसा दिखायी देगी, न कि हिंसा, जैसा आजकल बहुत लोग देखने का प्रयत्न करते हैं। आवश्यक तैयारी के साथ आप उसे पढ़ें, तो मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आपको वह शान्ति मिलेगी, जिसका आपको पहले कभी पता भी नहीं होगा। *यंग इंडिया, 3-11-'27*

धार्मिक शिक्षा

मैंने यह समझने के खातिर कि धार्मिक शिक्षा देने का उत्तम तरीका क्या है, बहुत से लड़कों पर प्रयोग किये हैं। जहाँ मुझे यह पता लगा कि किताबी तालीम कुछ सहायक होती है, वहाँ मैंने यह भी जाना कि अपने-आप में अर्थात् अकेली वह बेकार है। मैंने पाया कि धार्मिक शिक्षा वे ही गुरु दे सकते हैं, जो स्वयं धर्ममय जीवन व्यतीत करते हैं। मैंने देखा है कि लड़कों को शिक्षक जो पुस्तकें पढ़ाते या अपनी जबान से जो व्याख्यान देते हैं, उनकी अपेक्षा जो जीवन शिक्षक स्वयं व्यतीत करते हैं, उससे लड़के अधिक ग्रहण करते हैं। मुझे यह देखकर बड़ा हर्ष हुआ कि लड़के-लड़कियों में अनजाने ही लोगों के मन में प्रवेश करने की एक ऐसी शक्ति होती है, जिसके द्वारा वे अपने शिक्षकों के विचार जान लेते हैं। वह शिक्षक अभागा है, जो मुख से एक बात पढ़ाता है और हृदय में दूसरी ही रखता है! *विद गांधीजी इन सीलोन, पृ. 108-109*

धार्मिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में अपने धर्म के अलावा दूसरे मजहबों के उसूलों का अध्ययन शामिल होना चाहिए। इस काम के लिए विद्यार्थियों को संसार के भिन्न-भिन्न महान धर्मों के सिद्धान्तों को आदर और उदार सहिष्णुता की वृत्ति से समझने और उनकी कद्र करने की आदत डालने की तालीम दी जानी चाहिए। यह काम ठीक ढंग से किया जायेगा, तो उन्हें आध्यात्मिक

आश्वासन प्राप्त होगा और स्वयं अपने धर्म की अधिक कद्र करने में सहायता मिलेगी। परन्तु तमाम बड़े धर्मों का अध्ययन करते समय एक नियम सदा याद रखना चाहिए और वह यह है कि उनका अध्ययन उन धर्मों के प्रसिद्ध अनुयायियों के लेखों द्वारा ही करना चाहिए। उदाहरणार्थ, यदि कोई भागवत का अध्ययन करना चाहता है, तो उसे यह किसी विरोधी आलोचक के अनुवाद द्वारा नहीं करना चाहिए, बल्कि भागवत के किसी प्रेमी द्वारा किये गये अनुवाद से करना चाहिए। इसी प्रकार बाइबल का अध्ययन ईसाई भक्तों की टीकाओं द्वारा ही करना चाहिए। स्वयं अपने धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्मों के इस अध्ययन से मनुष्य को तमाम धर्मों की मौलिक एकता का ज्ञान होगा और उस सार्वत्रिक एवं शुद्ध सत्य की भी झाँकी मिलेगी, जो मजहबों और सम्प्रदायों के बाहरी कर्मकाण्ड से परे है।

कोई क्षणभर के लिए भी यह डर न रखे कि दूसरे धर्मों के श्रद्धापूर्ण अध्ययन से अपने धर्म में श्रद्धा कम हो जाने या कमजोर पड़ जाने की सम्भावना है। हिन्दू दर्शन मानता है कि सब धर्मों में सत्य के तत्त्व विद्यमान हैं और वह उन सबके प्रति आदर और श्रद्धा का रवैया रखने का आदेश देता है। अवश्य ही इसमें यह बात तो आ ही जाती है कि मनुष्य को अपने धर्म के प्रति आदर हो। दूसरे धर्मों का अध्ययन और उनकी कद्र करने से उस आदर में कमी होने की जरूरत नहीं; उसका अर्थ यह होना चाहिए कि वह आदर दूसरे धर्मों के लिए भी हो जाय।

इस मामले में धर्म की वही स्थिति है जो संस्कृति की है। जैसे अपनी संस्कृति की रक्षा का अर्थ दूसरी संस्कृतियों का तिरस्कार नहीं है, बल्कि दूसरी सब संस्कृतियों में जो उत्तम बातें हों उनको ग्रहण कर लेने की आवश्यकता है, ठीक उसी तरह की बात धर्म के बारे में होनी चाहिए। हमारे वर्तमान डर और अंधेरे आपसी घृणा, दुर्भाव और

अविश्वास के उस जहरीले वातावरण के परिणाम हैं, जो इस देश में उत्पन्न कर दिया गया है। हम पर सदा इस भय का भूत सवार रहता है कि कहीं कोई चुपके-चुपके हमारे धर्म की या हमारे प्रियजनों के धर्म की जड़ न उखाड़ दे। परन्तु जब हम अन्य धर्मों और उनके अनुयायियों के प्रति आदर और सहिष्णुता रखना सीख लेंगे, तब यह अस्वाभाविक स्थिति मिट जायेगी। *यंग इंडिया, 6-12-'28*

दूसरे धर्म

इस कालेज में शिक्षा पानेवाले 75 फीसदी छात्र हिन्दू हैं, उनसे मैं कहूँगा कि जब तक आप ईसा के उपदेशों का श्रद्धापूर्वक अध्ययन नहीं करेंगे, तब तक आपके जीवन अपूर्ण रहेंगे। मैं अपने ही अनुभव से इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि जो लोग दूसरे धर्मों के उपदेशों का श्रद्धापूर्वक अध्ययन करते हैं, वे किसी भी धर्म के हों, उनके हृदय संकुचित होने के बजाय विशाल बनते हैं। व्यक्तिशः मैं संसार के किसी भी बड़े धर्म को झूठा नहीं समझता। सभी ने मनुष्य-जाति को सम्पन्न बनाने का काम किया है और वे अपना काम अब भी कर रहे हैं।

एक बात है जो मुझे आपसे बोलते-बोलते सूझी है और जो मेरे बाइबल के प्रारम्भिक अध्ययन-काल में आयी थी। ज्योंही मैंने यह पाठ पढ़ा कि "इस संसार को ईश्वर और उसकी नेकी का राज्य बना लो तो और सब वस्तुएँ तुम्हें मिल जायेंगी", त्योंही यह मेरे हृदय पर अंकित हो गया। मैं आपसे कहता हूँ कि आप इस पाठ को समझें और उसकी भावना के अनुसार आचरण करें, तो आपको यह भी जानने की जरूरत नहीं रहेगी कि ईसा या किसी अन्य गुरु का आपके हृदय में क्या स्थान है। यदि आप ठीक सफाई-कर्म वाला काम करें, यानी अपने हृदयों को शुद्ध और पवित्र बना लें और उन्हें तैयार कर लें, तो आप देखेंगे कि ये सारे महान गुरु आपके दिलों में आपके निमंत्रण के बिना ही अपना-अपना स्थान ग्रहण कर लेंगे। मेरे खयाल से सभी

प्रकार की सही तालीम का यही आधार है। मन की संस्कृति हृदय की संस्कृति के अधीन होनी चाहिए। भगवान आपको शुद्ध होने में सहायता दे!

विद गांधीजी इन सीलोन, पृ. 144

आपका पहला उद्देश्य है प्राचीन संस्कृति को पुनर्जीवित करना। फिर आपको यह समझना है कि वह प्राचीन संस्कृति क्या है; और वह निश्चय ही ऐसी संस्कृति होनी चाहिए, जिसे पुनर्जीवित करने में तमाम विद्यार्थियों को, भले ही वे हिन्दू, ईसाई, बौद्ध या अन्य किसी धर्म के हों, दिलचस्पी हो। क्योंकि मैं यह मान लेता हूँ कि प्राचीन संस्कृति से आपका मतलब हिन्दू विद्यार्थियों तक ही सीमित रहने का नहीं है।

मैं मान लेता हूँ कि विद्यार्थी-कांग्रेस में हिन्दू, ईसाई, मुसलमान और बौद्ध सभी विद्यार्थी शरीक हैं। यद्यपि आज उसकी सूची में कोई मुसलमान या बौद्ध छात्र नहीं है, परन्तु मेरे तर्क के लिए यह महत्व की बात नहीं है। इसका सीधा-सा कारण यह है कि आपका अन्तिम लक्ष्य स्वराज्य-प्राप्ति है, न केवल जाफना के हिन्दुओं और ईसाइयों के लिए, बल्कि इस द्वीप के तमाम निवासियों के लिए जिसका जाफना एक भाग मात्र है। अतः मैंने इन धर्मों के विद्यार्थियों को सम्मिलित करने के सम्बन्ध में जो कुछ कहा है वह सही है। ऐसी स्थिति में हम फिर उसी प्रश्न पर पहुँच जाते हैं कि वह कौन-सी प्राचीन संस्कृति है जिसे हम फिर से जिन्दा करना चाहते हैं। इसलिए वह ऐसी होनी चाहिए, जो इन सब वर्गों के लिए सामान्य हो और स्वीकार्य हो। इसलिए वह संस्कृति बेशक मुख्यतः तो हिन्दू संस्कृति ही होगी, फिर भी वह निरी हिन्दू संस्कृति हरगिज नहीं हो सकती। मैं यह क्यों कहता हूँ कि वह मुख्यतः हिन्दू संस्कृति ही होगी? इसीलिए कि आप लोग, जो प्राचीन संस्कृति को पुनर्जीवित करना चाहते हैं, मुख्यतः हिन्दू हैं और बराबर उस देश की बात सोचते रहते हैं जिसे आप उचित रूप में और गर्वपूर्ण हर्ष के साथ अपनी मातृभूमि कहते हैं।

हिन्दू संस्कृति में, मैं नम्रतापूर्वक कहने का साहस करता हूँ कि बौद्ध संस्कृति का अवश्य समावेश होता है। इसका सीधा-सा कारण यह है कि बुद्ध स्वयं एक भारतीय थे; केवल भारतीय ही नहीं थे, बल्कि हिन्दुओं में से एक हिन्दू थे। मुझे गौतम के जीवन में कभी ऐसी कोई बात दिखायी नहीं दी, जिससे यह माना जा सके कि उन्होंने हिन्दू धर्म का त्याग करके कोई नया धर्म अपनाया हो। मेरा काम आसान हो जाता है, जब मैं यह भी सोचता हूँ कि ईसा स्वयं एक एशियायी थे; और इसलिए वास्तव में प्रश्न यह विचार करने का हो जाता है कि एशियायी अथवा प्राचीन एशियायी संस्कृति क्या है। इसी प्रकार मुहम्मद भी एक एशियायी थे।

चूँकि आप प्राचीन संस्कृति में जो कुछ उदात्त और स्थायी है उसी को पुनर्जीवित करना चाह सकते हैं, इसलिए आपका पुनरुद्धार-कार्य निःसन्देह इन धर्मों में से किसी का विरोधी नहीं होना चाहिए। तो अब प्रश्न इन तमाम महान धर्मों के समान तत्त्व, अधिक-से-अधिक मिलती-जुलती बातें, ढूँढ़ने का है। और इस प्रकार उदात्त और महान वस्तुओं के मेरे अपने अंदाज के अनुसार आप इस अत्यन्त सीधी-सादी बात पर आ जायेंगे कि आप सत्यशील और अहिंसक बनना चाहते हैं, क्योंकि सत्य और अहिंसा इन तमाम धर्मों के लिए समान हैं।

विद गांधीजी इन सीलोन, पृ. 129-30

प्राचीन संस्कृति के गुप्त खजानों की खोज करते-करते मुझे इस अमूल्य रत्न की प्राप्ति हुई है कि प्राचीन हिन्दू संस्कृति में जो कुछ स्थायी है, वही ईसा, बुद्ध, मुहम्मद और जरथुस्त्र के उपदेशों में भी पाया जाता है। तो मैंने अपने लिए यह काम आने वाली व्यवस्था बना ली है। यदि हिन्दू धर्म में मुझे कोई ऐसी पुरानी बात मिलती है, जो मेरे ईसाई भाई या मुसलमान भाई के लिए प्रतिकूल है, तो मैं तुरन्त उस दावे की पुरातनता के बारे में बेचैन और शंकाशील

होने लगता हूँ। इस प्रकार जाँच की प्रक्रिया से मैं इस अनिवार्य परिणाम पर पहुँचा कि इन दो अच्छी-पुरानी चीजों अर्थात् सत्य और अहिंसा जैसी पुरानी और कोई चीज दुनिया में नहीं है। और सत्य और अहिंसा के मार्ग पर काम करते हुए मुझे यह भी पता चला कि यदि प्राचीन रिवाज आज के युग में जीवन का जो रूप होना चाहिए उसके अनुकूल न हों, तो मुझे उन्हें फिर से जारी करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। प्राचीन रिवाज जिस समय अपनाये गये उस समय बिलकुल अच्छे और शायद सर्वथा आवश्यक रहे होंगे, परन्तु हो सकता है वे वर्तमान आवश्यकताओं की दृष्टि से सर्वथा समयबाह्य हों और फिर भी सत्य और अहिंसा के विपरीत न हों।

तो आप देख सकते हैं कि आपके और मेरे सामने मार्ग कितना सुरक्षित हो जाता है, जब हम अस्पृश्यता, देवदासी-प्रथा, शराबखोरी और दयासागर तथा क्षमासागर ईश्वर के नाम पर होनेवाले पशुवध को झट से और निःसंकोच अस्वीकार कर देते हैं। हम इन सब वस्तुओं को निःसंकोच और तुरन्त अस्वीकार कर सकते हैं, क्योंकि वे हमारी नैतिक भावना को नहीं जँचतीं। यह तो हुई इसके नकारात्मक पहलू की बात; परन्तु इसका एक रचनात्मक पक्ष भी है, जो उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि नकारात्मक पहलू है।

रचनात्मक पक्ष आपके सामने रखते हुए मैं अहिंसा के सिद्धान्त के एक अति आवश्यक उप-परिणाम की ओर ध्यान दिला दूँ। वह उप-परिणाम या निष्कर्ष यह है : यदि हमें अहिंसक बनना है तो हमें संसार में ऐसी किसी भी वस्तु की इच्छा नहीं करनी चाहिए, जो छोटे-से-छोटा या नीचे-से-नीचा मानव प्राणी भी प्राप्त नहीं कर सकता। यदि यह बात ठीक है—और मेरा दावा है कि यह अहिंसा के सिद्धान्त का सीधा निष्कर्ष है—और आप इसे स्वीकार करते हैं, तो इससे यह नतीजा निकलता है कि हमें संसार की किसी भी वस्तु के बदले में अपनी प्राचीन

सादगी को छोड़ नहीं देना चाहिए। अब आप शायद समझ सकेंगे कि जो आधुनिक भाग-दौड़ और आकर्षक चकाचौंध हम पर छाये जा रही है और जो हमारी तरफ पश्चिम से इतनी जबरदस्त ताकत के साथ आ रही है, उसका मैं इतना दृढ़ विरोध क्यों करता हूँ।

मैंने अपने लेखों में भी यह बताने की बड़ी कोशिश की है कि पश्चिम में अपनाये गये आधुनिक तरीकों, आवश्यकताओं और भौतिक सुखों की वृद्धि में और ईसा के महान पार्वतीय उपदेश की मूल शिक्षा में क्या अन्तर है। इसलिए मैंने अपने भाषण के प्रारम्भिक वाक्यों में यह संकेत कर दिया था कि आगे क्या आनेवाला है, जब मैंने आपसे यह कहा था कि आखिर तो ईसा भी एक एशियायी ही थे और मुहम्मद भी एशियायी थे। परन्तु ईसा के उपदेशों और सन्देश में तथा अमरीका, इंग्लैण्ड और पश्चिम के दूसरे भागों में आज जो कुछ हो रहा है उसमें तीव्र भेद बताते हुए मैं दक्षिण अफ्रीका के अपने हजारों ईसाई भाइयों के साथ प्रेमपूर्वक रहा हूँ; और अब चूँकि मेरा दायरा बढ़ा होता जा रहा है, इसलिए संसार-भर के ईसाइयों के साथ उसी प्रकार रह रहा हूँ।

इसलिए आप यहाँ के हिन्दू और बौद्ध—बौद्ध मुट्टीभर हों तो भी—यदि अपनी संस्कृति के प्रति सच्चे होंगे, तो आप इस आकर्षक चकाचौंध से कोई वास्ता नहीं रखेंगे, भले ही वह ईसाई वेष धारण करके भी क्यों न आपके पास आये।

यदि आपको अपने पर अटल विश्वास है, यदि आप साथ ही असीम धैर्य की आदत डालेंगे, तो आप देखेंगे कि ईसाई मित्र अपने साथ पश्चिम की चकाचौंध लेकर भी आपके पास आयेंगे तो भी वे उसे छोड़ देंगे और अपने में परिवर्तन करके सादगी के सिद्धान्त को अपना लेंगे; क्योंकि इसी से उस निष्कर्ष की कसौटी पूरी होगी, जो मैंने इस श्रोता-मण्डली के सामने रखने का साहस किया है।

विद गांधीजी इन सीलोन, पृ. 131-33 □

21 नवंबर : धीरेनदा पुण्य-तिथि

अन्त्योदय से क्रांति

□ धीरेन मजूमदार

अंतिम व्यक्ति से ऊर्ध्व की बनी सीढ़ी का अस्तित्व उन जीवन मूल्यों के कारण है, जो अन्याय, अत्याचार, शोषण, दमन और भ्रष्टाचार को फैलाने और कायम रखने के लिए अनिवार्य है। राजसत्ता इन मूल्यों की रक्षण करती है। आज दुनिया अन्याय व शोषण-मुक्ति के लिए गांधी की ओर आशा भरी निगाह से देख रही है। गांधी से क्रांति विचार की सम्भावना प्रकट करने से ही नयी दिशा मिलेगी और युग की छटपटाहट का समाधान भी मिलेगा। गांधी की नयी पद्धति धीरेनदा के अनुभव से हम प्राप्त कर सकते हैं।

—सं.

मार्च महीने में होली के दिन से हम किसी बड़े आदमी के घर या स्कूल में न ठहरकर अन्त्यजन के यानी भूमिहीन मजदूरों के घर पर ठहरने लगे हैं, जिसके कारण गांव में और खासकर बड़े आदमियों के मन में काफी असंतोष पैदा हुआ। उस असंतोष के निराकरण के लिए व्यक्तिगत चर्चा तथा भाषणों से जन-मानस में श्रमिक-प्रतिष्ठा का प्रतिपादन करता रहा हूँ। परिणाम अच्छा रहा है। लेकिन बावजूद तीन माह तक इस दिशा में लगे रहने के, मजदूरों के मानस में हमारे प्रति उदासीनता बनी ही रहती थी। वे रहने के लिए अपना घर देते थे, सभा में आकर चर्चा भी करते थे, लेकिन कुल मिलाकर उनका रवैया हमारे प्रति कटे-से रहने का ही था। वे हमारे साथ कभी खुलकर घुलते-मिलते नहीं थे। लगता था कि उनके मन की भावना यही

थी कि आखिर ये हैं तो उन्हीं बड़े लोगों की बिरादरी के और ये लोग उनके ही साथी हैं। ये जो हमारे घर पर ठहरते हैं वह एक नाटक-सा ही है। अतएव चातुर्मास के लिए यात्रा स्थगित होने के बाद तथा नवंबर की यात्रा की शुरुआत तक मेरा मन इसी का कारण हूँढ़ने तथा उसका निराकरण व उपाय खोजने में लगा रहा।

मैंने देखा कि अन्त्यजन में प्रवेश के लिए हमने नया निर्णय तो अवश्य किया है, लेकिन हमारा जो तरीका है उससे श्रमिक-प्रतिष्ठा का अपना उद्देश्य पूरा नहीं हो पाता है। हमारी पद्धति से श्रमिक की प्रतिष्ठा का अधिष्ठान न होकर उनके प्रति अपनी सहानुभूति ही प्रकट होती है। उस पद्धति में हम किसान और मजदूरों को दो श्रेणियों में बांट देते हैं और मजदूरों का स्तर नीचा ही रखते हैं। हमने जो यह निश्चय किया है कि हम किसी वर्ग के अतिथि नहीं हैं, बल्कि पूरे समाज के अतिथि हैं, यह पद्धति इस बात को स्पष्ट जाहिर नहीं करती है। हम जो दिन में किसानों के घर खाते हैं और रात को मजदूरों के घर से मुट्टी-मुट्टी अनाज बटोरकर उन्हीं में से किसी एक के घर बनवाकर खाते हैं, यह तरीका दोनों को वर्गों में बांट देता है। किसानों के घरों में पूरा भोजन करने से जहां हम उनकी अपेक्षाकृत अधिक समर्थता तथा ऊंचे स्तर को स्वीकार कर लेते थे, वहां मजदूरों में जो घर-घर से मुट्टी बटोरकर बनवाते थे उससे हम उनकी समर्थता को ही उजागर करते थे। इस पद्धति से उनके मन में 'हम अपने अतिथि को पूरा खिला नहीं पा रहे हैं' इस असमर्थता के कारण दीनता का संचार होता रहा होगा, और वे दलित हैं, उनके मन की यह भावना जहां की तहां रह जाती होगी।

चातुर्मास के पूरे चार माह में अपनी पद्धति के इस दोष को कैसे दूर किया जाय, इसी चिन्तन में लगा रहा। उसी चिन्तन में मैंने निश्चय किया कि ऐसा कुछ न किया जाय, जिससे यह जाहिर हो कि हम समाज को दो वर्गों में बांट रहे हैं। वस्तुतः मेरा यह

विचार कि समाज में स्पष्ट रूप से दो वर्ग नहीं हैं, बल्कि निम्नतम से ऊर्ध्वतम तक क्रमशः सीढ़ियां बनी हुई हैं, यह स्पष्ट हुआ। हमारी यात्रा के कार्यक्रम का उससे कोई मेल नहीं बैठता है। इसको सुधारने के लिए निर्णय कर लिया था कि अब भविष्य में यात्रा के पड़ाव पर ग्रामीण समाज के सर्वजन एक ही स्तर पर रहें, ऐसा हमारा व्यवहार हो। मैंने निर्णय किया कि अब अपने और अपनी टोली के साथियों के लिए गांव के हर घर से भिक्षा मांगी जाय, जिसकी मर्यादा अपनी श्रद्धा के अनुसार एक चुटकी से लेकर दो मुट्टी तक अनाज और जिसके घर में हो वह थोड़ी-थोड़ी साग-सब्जी हमें दे तथा चार, शाम की आवश्यकता की पूर्ति होते ही मांगना बंद किया जाय। चौमासा के बाद सहरसा पहुंचते ही यात्रा के क्रम में जब मैंने इस पद्धति को अपनाया तो देखा कि इस भिक्षा के मामले में गरीब मजदूर और समृद्ध किसानों में हम कोई अंतर नहीं करते हैं, यह बात उन्हें स्पष्ट रूप से महसूस हो रही है। बड़े किसानों के मन में पहले जो यह असंतोष था कि मजदूर के घर में ठहरकर हम उनका अपमान कर रहे हैं, वह भी धीरे-धीरे समाप्त होने लगा। वे समझने लगे कि हमारी दृष्टि सारे समाज को समान मानने की है, किसी के साथ विरोध और अन्य के साथ पक्षपात करने की नहीं है। व्यक्तिगत चर्चाओं तथा आम सभाओं के भाषणों में मैं सार्वजनिक समाज का विचार भी ब्योरे से समझाता था। मैंने देखा कि इससे मजदूर वर्ग की उदासीनता समाप्त होकर उनके मन में पहले का असंतोष घटा और सहकार की वृत्ति बढ़ी है। हमारे साथी जब भिक्षा के लिए घर-घर जाते हैं तो गरीब वर्ग के लोगों को आपस में यह चर्चा करते हुए सुनते हैं कि ये लोग सबको समान नजर से देखते हैं। हमसे जो दो मुट्टी तक मांगते हैं, अमुक बाबू से भी उतना ही लेते हैं, अधिक नहीं। कहीं-कहीं कुछ लोग साथियों से यह भी कहते हैं कि “दादा, जो हमारे घर ठहरते हैं, उनसे हम बेधड़क मिल

सकते हैं। अगर वे मुखिया के घर ठहरे होते तो हमें उनसे मिलने की भी हिम्मत नहीं हुई होती।’ इनकी इस भावना के कारण हम अपनी बात खुलकर कर पाते हैं। दूसरे जो नेता बड़े घर में ठहरते हैं, उनसे ये बड़े लोग अपनी ही बात करते रहते हैं और हमारा सवाल दबा ही पड़ा रहता है।”

सुसज्जित वर्ग में संस्कृति कहां

इस प्रक्रिया ने हमें भिन्न-भिन्न वर्गों की भावनात्मक परिस्थिति से भी परिचित कराया। भिक्षा के प्रश्न पर हम लोगों ने धीरे-धीरे अनुभव किया कि गरीब जनता अधिक भावनाशील, अधिक सहानुभूतिशील तथा अधिक उदार है, बनिस्वत उन बाबू लोगों के, जिनके पास समृद्धि अधिक है, सहूलियत अधिक है तथा अवसर अधिक हैं। भिक्षा तो वे दे देते हैं, लेकिन देने में उनकी शकल से अनुग्रह करने की भावना ही टपकती है, न कि किसी विचार या व्यक्ति के प्रति श्रद्धा की। कहीं-कहीं तो वे खीजकर इनकार भी कर देते हैं और कुछ लोग कुण्ठित तथा बोझिल भावना से देते हैं। कुछ ऐसे भी होते हैं, जो देते समय व्यंग्य कसते हैं। अर्थात् कुल मिलाकर गरीबों में सांस्कृतिक स्तर कुछ अधिक ही है, ऐसा अनुभव हुआ। बाबू लोगों के समाज में जो सांस्कृतिक वृत्ति की अभिव्यक्ति देखने को मिलती है वह वस्तुतः संस्कृति नहीं है, बल्कि मनोरंजन है, वह पालिश किया हुआ तत्व है। कुछ बाबू लोग ऐसे भी अवश्य होते हैं, जो प्रेम से, दिलचस्पी से और श्रद्धा से देते हैं, लेकिन उनकी संख्या बहुत थोड़ी है।

अब इधर मैं सोचने लगा हूँ कि तमाम सुख-सुविधा तथा सहूलियत के अवसर के बावजूद यह शुष्कता तथा मशीनीकृत स्वभाव क्यों? इसका कारण खोजने के सिलसिले में मुझे लगने लगा कि हजारों वर्ष से आत्मजीवी न रहकर जो परोपजीवी बने रहे, यानी अपनी अन्तर्निहित शक्ति के सहारे नहीं, बल्कि दूसरे के श्रम के सहारे निरंतर जाते रहने के कारण इनकी मानवता ही मर चुकी है, फिर संस्कृति

के विकास के स्रोत आये ही कहां से? प्रकृति की दी हुई आत्मशक्ति द्वारा जमीन से खुराक खींचकर जो वनस्पति पनपती है, जीती है, वह पत्र-पुष्प से सुशोभित होती है। अनेक प्रकार की सुगंधों से सुरभित होती है तथा नाना प्रकार के सुस्वादु फलों से समृद्ध होती है। वसंत ऋतु में समस्त विश्व को आनंदित और पुलकित करती है। यह प्रफुल्लता, यह ताजगी तथा यह हरियाली उस अमरबेल में कहां, जो अपने-आप जमीन से खुराक खींचकर जीने के बजाय इन्हीं वनस्पतियों के माथे पर बैठकर उन्हीं के अंग में से अपनी जीविका चलाती रहती है। उसमें न पत्र रहता है, न पुष्प, न सुगंध रहती है, न प्रफुल्लता ही। अगर कुछ में पत्र-पुष्प होते भी हैं तो वे भी कोमलताहीन और शुष्क होते हैं, फल तो उनमें होता ही नहीं। देखने में तो शकल अच्छी होती है, लेकिन उसमें वह लालित्य, वह माधुर्य कहां, जो स्व-आधारित वनस्पति में दिखायी देता है। तुम लोग कहोगे कि मैं कुछ उलटी बात कर रहा हूँ। वह इसलिए कि सभ्यता के समस्त इतिहास ने इन्हीं को सुसभ्य और सुसंस्कृत कहकर विश्व-मानव के मन पर वहम फैला रखा है। लेकिन जीवनभर सामान्य जन के सहवास के अनुभव पर से मैं स्पष्ट रूप से कह सकता हूँ कि ये परोपजीवी वर्ग सुसंस्कृत नहीं हैं, बल्कि सुसज्जित मात्र हैं। इसीलिए मैं कहता हूँ कि इस सुसज्जित वर्ग में संस्कृति नहीं है। यों सारे समाज में ही परोपजीवी के सिद्धांत को मान्य करने के कारण संस्कृति का हास हो रहा है। लेकिन जो जितना अधिक परोपजीवी है वह उतना ही अधिक संस्कृति-तत्त्व से दूर है। इसीलिए अन्याय, अत्याचार, शोषण, दमन और भ्रष्टाचार-उन्मूलन का नेतृत्व जब यह संस्कृतिहीन समुदाय करता है तो माध्यम के रूप में दंड-आधारित विकृत साधनों का ही इस्तेमाल करता है। इसीलिए एक आशा बनती है कि नेतृत्व यदि स्वावलंबी या परोपजीवी के हाथ में होगा तो साधन सुसंस्कृत होंगे।

यद्यपि ये अनुभव मुझे पहले से भी हैं, फिर भी मुकाबले में यह स्पष्ट अनुभव शिक्षा की पद्धति अपनाने के बाद ही हुआ। प्रश्न कहा जा सकता है कि यह अनुभव नया ही है। तब इधर इस पर नये सिरे से चिन्तन चलने लगा है। इस परिस्थिति और मनःस्थिति से जब मैं अपनी यात्रा के प्रारम्भिक काल में पुराने ढंग से चलता था, तब गांव के प्रतिष्ठित और बड़े लोगों के व्यवहार के साथ आज के व्यवहार का मुकाबला करता हूँ तो मुझे आश्चर्यचकित होना पड़ता है। हमारे साथी, जो एक दिन पहले अगले पड़ाव की पूर्व तैयारी में जाते थे और गांव के मुखिया, सरपंच या और कोई विशेष प्रतिष्ठित जन से मिलकर उनकी मार्फत मेरे रहने तथा भोजनादि की व्यवस्था करते थे तो वे बड़े उत्साह के साथ उसे कर देते थे। इतना ही नहीं, बल्कि सम्मानपूर्वक स्वागत भी करते थे। जब कभी उनके घर पर ठहरने की व्यवस्था रहती थी, तो घरभर मेरी सेवा के लिए उत्सुक रहता था। तब फिर आज, जब वही मनुष्य उन्हीं गांवों में जाता है तो अधिकतम दो मुट्टी अनाज देने में यह कुण्ठा, यह खीज, यह उदासीनता क्यों? स्पष्ट है कि हमारा सामान्य जन के घर ठहरना उन्हें अखरता है, जो वे प्रायः व्यक्त भी करते हैं। वे समझते हैं कि छोटे आदमियों के घरों में ठहरकर हमने उनकी प्रतिष्ठा को भंग किया है। वे मानते हैं कि उनके सहारे के बिना गांव में कोई कुछ कर ही नहीं सका है और जब कहीं-कहीं उनके संपूर्ण असहयोग के बावजूद सुचारु रूप से मेरा पूरा कार्यक्रम सम्पन्न हो जाता है तो उससे वे खिन्न होते हैं।

अन्त्यजन का हीनता-निरसन

उपर्युक्त अनुभव से मुझे लगा कि अपनी चर्चा तथा भाषणों में परिस्थिति का अधिक गहराई से विश्लेषण करने की जरूरत है। अब मैं स्पष्ट मानता हूँ कि अपनी क्रांति की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि हम अपने विचार को वर्तमान वास्तविक परिस्थिति के संदर्भ में उन्हें समझायें। हमें इस

तौर से उन्हें समझाना चाहिए कि समाज में किस तरह कोई वर्ग-भेद नहीं है, बल्कि अंतिम व्यक्ति के ऊर्ध्वजन तक क्रमशः एक लगातार सीढ़ी मात्र है। क्रांति का लक्ष्य साम्ययोग के लिए उस सीढ़ी का ढालूपन क्रमशः कम करते चलना है। इसके लिए हजारों वर्ष से मस्तिष्क में विशिष्टजन और सामान्यजन, उच्चजन और निम्नजन, सुसभ्यजन और असभ्यजन, सम्मानित और असम्मानित जन, कुलीनजन और हेयजन आदि भिन्नता का वहन जो घर कर गया है, उसकी सफाई पहली आवश्यकता है। हम अगर उसे कर नहीं सकते हैं, उसका कारण यह नहीं कि हमारे में किसी किस्म की बौद्धिक शक्ति कम है। हममें इतनी शक्ति है कि इन बातों का विश्लेषण कर उनको समझायें, लेकिन हमारे साथ दिक्कत यह है कि हम कार्यकर्ता-वर्ग भी इन सभी वहमों के शिकार हैं, इसीलिए हमारे मन में इसकी स्वाभाविक प्रेरणा नहीं जग पाती है। अतः कार्यकर्ता वर्ग से मेरा निवेदन यह है कि वे अपने के प्रति जागृत हों और बाहोश होकर अपने अंदर के इन वहमों को दूर करने की साधना में लगे। इस साधना के मार्ग के लिए कोई बना बनाया फार्मूला नहीं है। हर मनुष्य की अपनी दृष्टि, वृत्ति, स्वभाव तथा स्वधर्म के अनुसार भिन्न-भिन्न दिशा होगी, जिसकी खोज उन्हें स्वयं ही करनी पड़ेगी।

जब मेरे साथ पूर्व तैयारी में अगले पड़ाव पर जाते हैं तो उस गांव के बड़े लोग, जिनमें कुछ मेरे काफी स्नेहीजन हैं तथा जिनमें मेरे प्रति आदर की भावना रहती है वे मेरे उस साथी से आग्रह करते हैं, जिद करते हैं कि मैं उन्हीं के घर ठहरूँ, ताकि मैं वहां आराम से रह सकूँ। लेकिन जब हमारे साथी आग्रहपूर्वक गरीब की टूटी झोपड़ी ही पसंद करते हैं और उसी को मेरे रहने के लिए निर्णय कर लेते हैं, तो वे खिन्न होते हैं और मेरे पहुंचने पर अपनी शिकायत जाहिर करते हैं। फिर वे कहने लगते हैं कि मैं बहुत बड़ा तपस्वी हूँ, त्यागी हूँ और इसी तरह से मेरे

गुणों का वर्णन करते हैं। सामान्य जन भी तपस्वी, महात्मा आदि शब्दों से मुझे विभूषित करते रहते हैं।

वस्तुतः इस देश के लिए यह एक बड़ी विडम्बना है कि कोई भी मनुष्य, जो साधारण गृहस्थ भी है, अगर कुछ विचार भी रखता है, वैज्ञानिक ढंग से कुछ सोचता है और अपने विचार के अनुसार आचरण का प्रयास करता है, तो उसे लोग महात्मा, संत, तपस्वी आदि का विशेषण लगाकर प्रणाम करने लगते हैं, श्रद्धा-भक्ति करने लगते हैं। उन्हें इस प्रकार के उच्च स्थान पर बैठाकर अपने को अलग कर लेते हैं। और उनका यह कहकर अनुसरण नहीं करते हैं कि हम सामान्य गृहस्थ हैं, मोह के जाल में फंसे हुए हैं, पापी हैं तो इनके पीछे चलना हमारे लिए असंभव है। उन्हें दर्शन कर, पुष्पांजलि चढ़ाकर, अपने को धन्य मानकर स्वयं को जहां के तहां रखते हैं। यही कारण है कि यद्यपि भारत में अवतारों और महात्माओं का, ऋषियों और तपस्वियों का जिस संख्या में जन्म होता रहा है, वह शायद विश्वभर के टोटाल से भी अधिक होगा, फिर भी इस देश के साधारण मनुष्य सबसे ज्यादा गिरे हुए हैं। इस गिरे हुए मानस को उठाये बिना आम आदमी को तैयार नहीं किया जा सकता। गरीब के घर ठहरने से उनके मानस को उठाने में मदद मिलेगी, ऐसा मैं मानता हूँ। इसलिए सामान्य जन के घर ठहरने के प्रश्न को लेकर इस मानस के परिमार्जन का भी प्रयास करता हूँ। मैं उनसे कहता हूँ कि इस गांव में, दूसरे अनेक गांवों में जो बड़े लोग हैं, जिनकी पक्की कोठियां हैं, जिनमें बहुत से लोग ऐसे भी हैं, जो मेरे स्नेहीजन हैं, वे मेरे प्रति आदर और श्रद्धा की भावना भी रखते हैं। मैं जब टूटी झोपड़ियों में टिकने का आग्रह करता हूँ तो वे मुझसे मीठी लड़ाई भी करते हैं। कहते हैं, “हमारे यहां सारी सुख-सुविधा छोड़कर आप इस असुविधा और तकलीफ की जगह क्यों रहते हैं?” यह सब देखकर आप लोग मेरे लिए तपस्वी,

महात्मा, त्यागी आदि विशेषण लगाते हैं। मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि मैं कोई तपस्वी नहीं हूँ, मेरा रहन-सहन देखिये। उसे देखकर तो गांव के काफी लोग यह टीका भी करते हैं, “देखो, इनके पास कितना सामान है, किस तरह रहते हैं। इन्हें कोई गरीब कहेगा? इन्होंने गरीबी का एक ढोंग निकाला है।” मैं जब गाड़ी से उतरता हूँ, पूरी गृहस्थी का सामान लेकर उतरता हूँ। मेरे साथ एक परिवार रहता है, जिसमें बाल-बच्चे भी हैं। तो मैं एक गृहस्थ हूँ। आप लोगों के समान मध्यम-वर्ग का गृहस्थ जैसा हूँ। गरीब के घरों में टिकता हूँ, लेकिन गरीबी से नहीं रहता हूँ। क्योंकि मैं नहीं चाहता हूँ, और न इस बात को बर्दाश्त कर पाता हूँ कि देश में कोई गरीब रहे। हर गृहस्थ स्वार्थी होता है। वह उसका स्वधर्म है। त्याग गृहस्थ का धर्म नहीं है। उसे बाल-बच्चे ठीक ढंग से पालना है, जो काम त्यागी नहीं कर सकता। त्याग संन्यासी और महात्माओं का धर्म है। मैं कोई संन्यासी नहीं हूँ, स्वार्थी हूँ, चूंकि हर गृहस्थ स्वार्थी है। लेकिन हर गृहस्थ को, वह कितना भी गरीब और दलित क्यों न हो, प्रतिष्ठा की, इज्जत की भूख है। मैं तो न गरीब हूँ, न दलित हूँ, तो मुझे कितनी प्रतिष्ठा और इज्जत की भूख है, उसे आप सहज ही समझ सकते हैं। मुझे भी प्रतिष्ठा और इज्जत की भूख है। वह भूख श्रेष्ठ इज्जत की है। आप सब जानते हैं कि जिस देश में कोई श्रेष्ठ मनुष्य अतिथि के रूप में पहुंचता है तो वह उस देश के राजमहल में ठहरता है। जो कोई राजमहल में ठहरता है उसे उस देश के सब लोग श्रेष्ठ जन समझकर इज्जत करते हैं। मैं जब किसी गांव में जाता हूँ तब उस देश के राजमहल में ही ठहरता हूँ। इस मुल्क में लोकतंत्र है। लोकतंत्र में बहुमत का राज्य होता है। अब मुल्क में 75 प्रतिशत लोगों की टूटी झोपड़ी ही है। 75-80 प्रतिशत बहुमत को प्रचंड बहुमत कहा जाता है। जो 20-25 प्रतिशत लोग एकदम भूखे नहीं रहते हैं, खाते-पीते हैं, वे तो अत्यन्त अल्पमत में हैं।

लोकतंत्र में 20 प्रतिशत वालों की क्या प्रतिष्ठा है? अब आपके देश का राजमहल ऐसा ही है तो मैं क्या करूँ? आप पूछ सकते हैं कि अगर वे ही राजा हैं तो देश की राजगद्दी इन 20-25 प्रतिशत लोगों के कब्जे में क्यों है? उत्तर में मैं कहना चाहता हूँ, “वह कब्जा नाजायज कब्जा है।” राजतंत्र में किसी देश का जायज राजा गद्दीनशीन राजा का पहला बेटा होता है। उसे ही समाज द्वारा विधिवत सिंहासन पर बैठाया जाता है। लेकिन कभी-कभी ऐसा भी होता है कि कोई जबरदस्त व्यक्ति, गुंडा टाइप का आदमी अपने साथ जबरदस्तों का गिरोह बनाकर राजा के बेटे—जायज राजा को धक्का मारकर नीचे गिरा देता है और गद्दी पर खुद नाजायज कब्जा कर लेता है। उसके राज्य को नाजायज राज्य कहते हैं। हमारे यहां भी जो 20 प्रतिशत का राज्य चल रहा है, वह नाजायज है। नाजायज राज्य को कायम रखने के लिए दंड और कानून की शक्ति से हुकूमत करना आवश्यक हो जाता है, इसीलिए तो राज्य के साये में 20 प्रतिशत 80 प्रतिशत का शोषण कर रहे हैं। जब स्वराज्य आयेगा तो राज्य 80 प्रतिशत का होगा। उसमें हुकूमत नहीं होगी, व्यवस्था होगी। इस लोकतांत्रिक मुल्क में 80 प्रतिशत भूखी और अर्धभूखी, टूटी झोपड़ी-निवासी जनता का असली राज्य है। आज जो राज्य चलता है वह तो बिलकुल नाजायज राज्य है। तो मैं कहना चाहता हूँ कि इस देश का राज्य ही शत-प्रतिशत बोगस है। अतः सबको मिलकर असली तथा जायज लोगों को सिंहासन पर बैठने के प्रयास में लगना होगा। उसके लिए चाहे जितनी तकलीफ, चाहे जितनी असुविधा भोगने को तैयार रहना होगा।

मेरी इस प्रकार की चर्चाओं और भाषणों से धीरे-धीरे बड़े लोगों का असंतोष कुछ तो दूर होता ही है, लेकिन सबसे अधिक लाभ तो यह होता है कि अत्यन्त धूमिल परिमाण में ही सही, गरीबों में और छोटे लोगों में अपने अंदर की दीनता और हीनता की भावना कुछ कम होती है। गरीब लोगों में

भी ऐसे काफी लोग हैं, जो मेरे इस रवैये पर काफी व्यंग्य करते हैं। वे हमसे व्यंग्य की मुद्रा में कहते हैं, “आप तो गरीब नहीं हैं। आप जैसा खाते-पीते हैं, जितने कपड़े पहनते हैं, उससे तो आप काफी अमीर हैं, ऐसा दीखता है, फिर भी आप हमारे यहां क्यों ठहरे हैं?” जवाब में मैं उनसे कहता हूँ, “आपके घर में मुझे दिल मिलता है और अमीरों के यहां दौलत। मुझे दौलत की अपेक्षा दिल ज्यादा प्रिय है, अर्थात् मुझे जिस चीज की भूख है वह आपसे ही मिलती है।”

अहिंसा की क्रांति के लिए यह अनिवार्य आवश्यकता है कि छोटे लोगों में, दलितों में, अन्याय पीड़ित और शोषित जनता में हजारों बरसों से पूंजीभूत विक्षोभ का, जिसे परंपरागत क्रांतिकारियों ने परिवर्तित तथा परिपुष्ट किया है, कुछ हास हो इसका प्रयास किया जाय और धीरे-धीरे उसका निराकरण हो। मैंने अपनी यात्रा के क्रम में उपर्युक्त जो नया बदल किया है, वह इसी प्रयास के लिए है। अहिंसक क्रांति की पद्धति अगर संघर्ष की न होकर सम्मिलन की है तो क्रांतिकारियों के लिए इसी परिस्थिति के निर्माण-कार्य का मार्ग खोजन ही प्राथमिक आवश्यकता है। यद्यपि बड़े लोगों के, अन्यायी और शोषक लोगों के हृदय-परिवर्तन और छोटे लोगों के विक्षोभ निराकरण की प्रक्रिया साथ-साथ नहीं चलेगी, तब तक सम्मिलन की प्रक्रिया की शुरुआत ही नहीं हो सकती। हमारे सभी साथियों को क्रांति के इस महत्त्वपूर्ण पहलू पर गंभीरतापूर्वक ध्यान देने की जरूरत है। कहने का तात्पर्य यह है कि अन्त्यजन से हीनता का निराकरण किये बिना उसे क्रांति की प्रक्रिया में शरीक करना संभव नहीं है।

इस प्रकाश शोषित, दलित तथा छोटे कहलाने वाले मनुष्य समूह को प्रतिष्ठा देकर उसे समाज में उठाने का प्रयास करने की यात्रा हर क्रांति प्रेमी को करनी होगी, तभी समाज में समग्र क्रांति की, सांस्कृतिक क्रांति की भूमिका बनेगी और यहीं से क्रांति यात्रा का प्रारम्भ हो सकेगा। □

सभ्यता का संकट

वर्तमान ऐतिहासिक युग, जिसे योरोप के लोगों ने आधुनिक काल कहा, इसने विश्व में एक नयी सभ्यता (?) को खड़ा किया है। इस आधुनिक सभ्यता की बुनियाद का निर्माण लगभग 16वीं शताब्दी से 18वीं शताब्दी तक रहा।

प्रारंभ में इस सभ्यता ने नये विचार को प्रतिष्ठित करने के नाम पर अपनी बुनियाद रखनी शुरू की थी। इसके पूर्व की लगभग सभी सभ्यताओं में पदार्थ से अधिक महत्त्व सार तत्त्व को या सत्व को दिया जाता था। और इस सत्व (essence) का आधार पदार्थ में नहीं माना जाता था। उसके नियामक सिद्धांत पदार्थ से परे माने जाते थे। पदार्थ से परे, सूक्ष्म जगत एवं अव्यक्त जगत की अवधारणा थी। अर्थात् अव्यक्त में सिद्धांत निहित था, व्यक्त में नहीं। ज्ञान व प्रज्ञा का स्रोत सूक्ष्म जगत व अव्यक्त जगत में माना जाता था।

सभ्यता के इस नवयुग का प्रारंभ इस विचार के स्थान पर नये विचार को स्थापित करने के नाम पर आया। यह नया विचार भी विचार ही था, किन्तु इसका अधिष्ठान स्थूल जगत से परे नहीं माना गया। सूक्ष्म जगत एवं अव्यक्त जगत की अवधारणा को पूरी तरह से अस्वीकार कर दिया गया। ज्ञान पदार्थ जगत के ज्ञान में सिमट गया तथा प्रज्ञा का स्थान बौद्धिकता (intelligence) ने ले लिया।

लेकिन Idea (अर्थात् विचार, सिद्धांत व दार्शनिकता) का वर्चस्व शीघ्र ही खत्म होने लगा। इसी दौरान में विज्ञान एवं मशीन उद्योग के विकास ने Idea के वर्चस्व के स्थान पर पदार्थ के वर्चस्व को स्थापित किया।

इस प्रकार वर्तमान (या आधुनिक)

सभ्यता मूलतः पदार्थ केन्द्रित है, विचार (प्रज्ञा या अंतश्चेतना) केन्द्रित नहीं।

मनुष्य एक ऐसी जीव प्रजाति है, जिसने अपनी चेतना का निरंतर विकास एवं विस्तार किया है। इसी कारण संपूर्ण मनुष्य जाति पीढ़ी-दर-पीढ़ी सूक्ष्म एवं व्यापक चेतना से आप्त भी होती जाती रही है तथा उसे परिष्कृत भी करती जाती रही है। यही व्यापक व सूक्ष्म चेतना मनुष्य की सभ्यता की नियामक रही है।

व्यापक व सूक्ष्म चेतना

सभ्यता के मूल में मनुष्य है, पदार्थ नहीं। और, सभ्यता के मूल में वह मनुष्य है, जो व्यापक और सूक्ष्म चेतना से अनुप्राणित होता है। व्यापक व सूक्ष्म चेतना संपूर्ण रूप से व्यक्तियों में प्रकट हो, इसकी संभावना बहुत कम होती है। लेकिन उसी का अंश प्रत्येक मनुष्य की चेतना में प्रकट होता है। सबकी चेतना, उसी व्यापक सूक्ष्म चेतना से जुड़ी है, इसी कारण मनुष्य व्यापक एकता का अनुभव करता है। गुण वैभिन्न्य के रहते बुनियादी एकता का रहस्य इसमें निहित है।

किसी-किसी बुद्ध-पुरुष (व्यक्ति) में यह व्यापक व सूक्ष्म चेतना लगभग संपूर्ण रूप से प्रकट होती है। तब हम उस शास्ता को समस्त मानवता का प्रतिनिधि मान लेते हैं।

व्यापक व सूक्ष्म चेतना का क्षितिज बहुत बड़ा होने के कारण, अक्सर व्यक्ति उसे स्थाई (सर्वकालिक) एवं सर्वव्यापी मान लेता है। किन्तु काल प्रवाह में इसमें परिवर्तन होता है। यह सच है कि किसी कालखंड में इस व्यापक और सूक्ष्म चेतना से ही व्यक्ति अनुप्राणित होता जाता है। उस कालखंड में व्यापक व सूक्ष्म चेतना ही समाज की संरचना व संगठन का आधार बना रहता है।

व्यक्ति जब अपने को इस व्यापक से अलग-थलग कर लेता है, तो उसमें उस विशुद्ध चेतना (या सिद्धांत) का कोई तत्त्व प्रकट नहीं होता। ऐसे में वह व्यक्ति 'स्व' चेतना प्रेरित न होकर, एक मशीन के पुर्जे के समान व्यवहार करता है। मानों समाज एक

यंत्र के समान संचालित हो रहा हो। लेकिन व्यापक समाज हर स्थिति में कुछ मूल्यों/सिद्धांतों की बात करता है, तो व्यक्ति उन मूल्यों/सिद्धांतों का उसके अंतरात्मा से कोई संबंध नहीं रहता। अंतरात्मा की शक्तियों से च्युत, बाह्य आचरण एक मशीन के पुर्जे के समान ही होता है, क्योंकि इसका व्यापक सूक्ष्म चेतना से संबंध टूट जाता है। इसीलिए यह व्यक्तियों की आंतरिक एकता का माध्यम नहीं रह जाता है। बाह्य एकता बनाये रखने के लिए हिंसा की शक्ति का माध्यम लिया जाता है। इस प्रकार यह प्रक्रिया एक ओर अंतरात्मा की शक्ति व अंतरात्मा की चेतना से विलगाव करती जाती है तथा दूसरी ओर व्यक्ति यंत्र के पुर्जे के समान व्यवहार करता जाता है, जिसकी संचालन शक्ति प्रत्यक्ष या सूक्ष्म हिंसा होती है।

वर्तमान सभ्यता के मूल में यही है— अंतरात्मा से विलगाव तथा यंत्र के पुर्जे की समान स्थिति। अंतरात्मा से विलागव की प्रक्रिया तेज इसलिए हुई क्योंकि व्यक्ति की चेतना को व्यापक-सूक्ष्म चेतना से काट दिया गया। व्यक्ति महज एकाकी इकाई में परिवर्तित कर दिया गया। तर्क बुद्धि (Reason) एवं औचित्य (Rationality) के गुण व्यक्ति केन्द्रित बना दिये गये, जिनका व्यापक सूक्ष्म चेतना से कोई संबंध नहीं था। व्यक्ति को 'स्व' का ज्ञान के बजाय स्व-हित (Self-interest) ही नयी अर्थव्यवस्था का मूल आधार बना।

इसके साथ ही, दूसरी ओर पूंजीवाद एवं औद्योगिक सभ्यता ने व्यक्ति को उसकी अंतरात्मा की गुणात्मक विशेषता से काट कर, उसे मशीन/व्यवस्था/श्रेणीबद्धता में संयोजित करने व उसके अनुकूल बनाने वाली शिक्षा, विशेषज्ञता व कौशल सीखने की ओर बढ़ाया। इस प्रकार वर्तमान शिक्षा भी आत्मा से विलगाव पैदा करने वाली तथा व्यक्ति को यंत्र का पुर्जा बनाने वाली व्यवस्था का हिस्सा बन गयी।

विमल कुमार

गांधी की अंतिम इच्छा स्त्रियां पूरी करें

□ विनोबा

बहनों पर गांधीजी की बहुत श्रद्धा थी। गांधीजी के कारण हजारों बहनों ने बड़े-बड़े काम किये। उनका दिल गांधीजी के सामने खुलता था। महिलाओं से उन्होंने कितनी आशा रखी थी। श्रीकृष्ण भगवान के बाद महिलाओं में इतनी ताकत लगाने वाले और उनसे इतनी आशा रखने वाले बापू ही निकले। उनकी उस आशा का स्पर्श बहनों को हो जाय, तो वे खूब काम कर सकती हैं।

बापू ने अपने अंतिम वसीयतनामे में कांग्रेस को लोक सेवक संघ बनाने का आदेश दिया था। लेकिन कांग्रेस वाले लोक सेवक नहीं बन सकते थे, क्योंकि उनके दिमाग में सियासत भरी थी। तो अब स्त्रियां आगे आकर कहें कि पुरुषों ने वह सलाह नहीं मानी, लेकिन हम मानेंगी और लोक सेवक संघ बनायेंगी, जिसका सारे समाज पर नैतिक असर पड़ेगा, चुनाव पर भी प्रभाव पड़ेगा। शांति सैनिक के नाते, किसी भी पार्टी में फंसकर स्वतंत्र बुद्धि से समाज का नेतृत्व करने के लिए स्त्रियां आगे आयेंगी तब आज की गुत्थियां सुलझेंगी और दुनिया को बहुत मदद मिलेगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

जोड़ने वाली शक्ति बनें : यह भी पूछा जाता है कि स्त्रियों को राजनीति में भाग लेना चाहिए या नहीं? स्त्रियों को राजनीति से उदासीन नहीं रहना चाहिए। उन्हें राजनीति का सूक्ष्म अध्ययन करना चाहिए और राजनीति में क्या-क्या हो रहा है, इसका बराबर निरीक्षण करते रहना चाहिए। स्त्रियों को तो राजनीति को जोड़ने की राजनीति हाथ में लेनी चाहिए। वैसे देखा जाय तो *हिन्दुस्तान*

सर्वांदय जगत

में संविधान के अनुसार महिला राष्ट्रपति भी बन सकती है और प्रधानमंत्री भी। स्त्रियों के लिए ये सारे स्थान खुले हैं। लेकिन उन्हें किसी भी स्थान पर जाकर पुरुषों का अनुसरण नहीं करना चाहिए। पुरुष पक्ष बनाते हैं और एक-दूसरे से द्वेष बनाते हैं। स्त्रियों को पक्ष नहीं बनाने चाहिए। उन्हें ऐसा निश्चय करना चाहिए कि हम पक्षमुक्त रहेंगे, पक्ष नहीं बनाने चाहिए। उन्हें ऐसा निश्चय करना चाहिए कि हम पक्षमुक्त रहेंगे, पक्ष में पड़ने की हमें कोई जरूरत नहीं है। स्त्रियां अगर चुनाव में खड़ी होना चाहें तो किसी पार्टी की ओर से खड़ी न हों, बल्कि जनता से यह कहकर खड़ी हों कि “हम स्त्रियां हैं, हम सबकी सेवा करेंगी। इस ख्याल से आप हमें चुनना चाहें, तो चुनें। हम वहां जाकर निष्पक्ष भाव से सेवा करेंगी। किसी मनुष्य की ओर इस दृष्टि से नहीं देखेंगी कि वह अमुक पक्ष या जाति वाला है। हम सबकी समान भाव से सेवा करेंगी।” इस तरह उन्हें स्वयं तो पक्ष से परे रहना ही चाहिए, बल्कि पुरुषों से कहना चाहिए कि “खबरदार! वैर, द्वेष आदि फैलाओगे, तो नहीं चलेगा।” उन्हें स्वयं पक्ष से परे रहना चाहिए और ऐसी कोशिश रहनी चाहिए कि पुरुषों को भी पक्षों से मुक्ति मिले। स्त्रियां मेरी यह सलाह अमल में लायेंगी, तो हिन्दुस्तान का कलुषित वातावरण निर्मल हो जायेगा। किसी भी पक्ष में रहना स्त्री के लिए शोभादायक नहीं है, उसके लिए पक्षातीत रहना ही शोभादायक है, क्योंकि वह मातृशक्ति है। दो बेटे लड़ते हैं तो मां किसी एक का पक्ष नहीं लेती, दोनों को संभालती है। एक बाजू में तीस और दूसरी बाजू सत्त ऐसी कल्पना मातृत्व के खिलाफ है। मातृ-शक्ति में ऐसे टुकड़े नहीं आते हैं, क्योंकि माता तो सबका हित देखती है। एक जमाने में बहुमत पर लघुमत का राज्य था, अब लघुमत पर बहुमत का राज्य है। यह तो केवल प्रत्याघातरूप है। वास्तव में सबका हित ही स्त्री को देखना चाहिए। इस तरह चुनाव स्त्रियों के हाथ में होना चाहिए। पुरुषों की

चोटी स्त्रियों के हाथ में देनी चाहिए। परंतु अब पुरुष चोटी रखते नहीं हैं और स्त्रियों के बाल लंबे हैं, इसलिए उन्हीं की चोटी पुरुषों के हाथ में रहने का भय है। परंतु वास्तव में पुरुषों पर स्त्रियों का अंकुश रहना चाहिए।

शराबबंदी जरूरी : स्त्री-शक्ति के लिए और भी एक चीज करनी होगी। आज भारतभर में हमने शराब सबदूर खोल दी है। शराब पीने वाले पतिदेव घर आकर पत्नी को ठोकते-पीटते हैं। बहनें अपने पतिदेवों से त्रस्त हो गयी हैं। इससे गरीबी तो हटती नहीं, उल्टा जो पैसा मिलता है, वह शराब में बरबाद हो जाता है और बहनों की मारपीट चलती है। शराब के बदले में सरकार को क्या मिलता है? पैसा! इसे मराठी में बोलते हैं—पैशाची वृत्ति—पैसे वाली वृत्ति। संस्कृत में इसका अर्थ होता है, पिशाच की वृत्ति।

राजाजी ने अपने प्रांत में शराबबंदी की थी। वे 94 साल तक जीये। उनके दीर्घायु का कारण पूछने पर उन्होंने कहा था : “मैंने अपने राज्य में शराबबंदी की है, उसके परिणामस्वरूप यहां की गरीब बहनें मुझे आशीर्वाद देती हैं। उनका जीवन अच्छा चला है, उनकी पिटाई होती नहीं। घर में संतोष रहता है। उनके उस आशीर्वाद के कारण मैं दीर्घायु हूं।”

तो हिन्दू धर्म और इस्लाम धर्म ने शराब का निषेध किया है, परंतु पैसे के वास्ते शराबबंदी नहीं हो पाती। पैसे को अपना मूल्य तो है नहीं, जो अनाज को है। इस वास्ते तो उपनिषद ने भी आज्ञा दी है कि ‘अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्’—अन्न को ब्रह्म जान। और इसीलिए ‘अन्नं बहु कुर्वति तद् व्रतम्’—अन्न खूब पैदा करो, यह व्रत ले लो। आज देश में अनाज की कमी है। तो मैंने सुझाया कि आप जो जमीन-महसूल लेते हैं, वह अनाज में लें। तो सरकार के पास भी अनाज आयेगा और वह अपने कर्मचारियों को भी थोड़ा अनाज दे सकेगी। एक अच्छी चीज होगी।

आप पूछेंगे कि इसके साथ स्त्री-शक्ति का क्या संबंध है? स्त्रियों को घर में पकाना

पड़ता है, बच्चों को खिलाना पड़ता है। उन्हें क्या खिलायें, खुद क्या खायें, यह उनके सामने सवाल आता है। जब तक घर में पूर्ण अनाज न हो, घर समृद्ध न हो, तब तक स्त्री-शक्ति बढ़ नहीं सकती, समृद्ध नहीं हो सकती, इस वास्ते यह होना चाहिए।

पिकेटिंग करें : शराबबंदी के लिए लोकमत खड़ा करना, जरूरत हो तो शराब की दुकानों पर पिकेटिंग करना—आदि काम खास करके बहनें उठा सकती हैं। जैसे बापू ने करवाया था। इस प्रकार का सक्रिय आंदोलन उत्तर प्रदेश में तो करना पड़ेगा, ऐसा स्पष्ट दिखायी दे रहा है।

मुस्लिम-लॉ में सुधार हो : स्त्री-शक्ति के लिए और भी दो बातें करनी होंगी। मुस्लिम जमात में एक पति तीन-चार पत्नियों करता है। हमारा राज्य धर्म निरपेक्ष कहलाते हुए भी उसमें स्त्रियों को तकलीफ देने वाला ऐसा विलक्षण कानून है। घर में तीन-चार बहनें हों तो कैसी कलह होती होगी, कैसी-कितनी शांति रह पाती होगी, आप सहज कल्पना कर सकते हैं। वे कहते हैं कि इसका कारण है मुस्लिम लॉ (कानून)। लेकिन बाबा इतना बेवकूफ नहीं है। बाबा ने कुरान-शरीफ का अध्ययन कम-से-कम तीस साल किया और उसका सार निकाला है रूहुल कुरान। उसमें जो मुख्य चीज है उसे 'उम्मुल किताब' कहते हैं यानी कुरान का मुख्य हिस्सा। भगवान कैसा है, उसका स्वरूप क्या है, उसकी भक्ति कैसे करना, उसके लिए दान-धर्म करना, इत्यादि जो धर्म-विचार है, वह मुख्य है। बाकी जिसे 'कानून' कहते हैं, 'शरीयत', वह उत्तरोत्तर बदलती जाती है। मुहम्मद पैगम्बर के जमाने में भी बदली है, बाद में भी बदली है। परंतु हम लोग समझते हैं कि ऐसी मांग मुसलमानों की तरफ से आ जाय तो अच्छा है। कुछ मुसलमानों की तरफ से यह मांग आ भी रही है, हमें जरा राह देखी चाहिए। मैं उसके विरोध में नहीं हूँ। ठीक है, थोड़ी राह देखना अच्छा है। परंतु उनको समझाना चाहिए कि "सब पत्नियों के

काशी में वरिष्ठ गांधीवादी कृष्णराजजी की अस्थि विसर्जित

वरिष्ठ गांधीवादी कृष्णराज मेहता का निधन 6 सितंबर, 2016 को पुणे में हुआ। उनकी अस्थि विसर्जन 14 नवंबर, 2016 को 'कार्तिक-पूर्णिमा' (आपका जन्मदिन) के दिन वाराणसी में भी किया गया। इसके पूर्व 10 नवंबर, 2016 को सर्व सेवा संघ, वाराणसी के प्रार्थना-भवन में प्रकाशन के पूर्व संयोजक रामधीरज भाई के नेतृत्व में श्रद्धांजलि सभा का आयोजन किया गया, जिसमें सर्व सेवा संघ प्रकाशन के सभी कार्यकर्ताओं सहित 'सर्वोदय जगत' के संपादक अशोक मोती, श्रीमती साधना, कुमारी अभिधा आदि ने सर्वधर्म प्रार्थना कर अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की।

स्व. कृष्णराजजी के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व पर प्रकाश डालते हुए रामधीरज भाई ने कहा कि आप गांधी विचार के प्रति पूरी तरह समर्पित पुरुष थे। आपका किसी से कोई विरोध नहीं रहता था। सबके साथ जुड़ने और सबको जोड़ने की आप में बेजोड़ क्षमता थी। कृष्णराजजी ने आपातकाल जैसे कठिन समय में सर्व सेवा संघ प्रकाशन को संभाला था। सही मायने में कहा जाय तो आपका व्यक्तित्व आ. राधाकृष्ण बजाज के समतुल्य था।

अशोक मोती ने कहा कि मेहताजी के व्यक्तित्व पर अगर एक वाक्य में प्रकाश

साथ समान व्यवहार करना अशक्य वस्तु है। इसलिए वह चीज जानी चाहिए।" तब स्त्रियों की ताकत बनेगी।

भंगी-मुक्ति : अन्व्योदय : भंगी-मुक्ति होगी, तब स्त्री-शक्ति जागेगी। जहां-जहां भंगी काम करते हैं वहां मैला उठाने का काम स्त्रियां करती हैं और पतिदेव बैठे रहते हैं गाड़ी पर। अंदर जाकर मैला लाना, गाड़ी में डालना—सारी नाक बदबू से भर जाती है—यह सारा बहनों का काम! तात्पर्य यह है कि भंगी लोग बहनों को बराबर दबाते हैं तो स्त्री-शक्ति जगाने के लिए समाज में से भंगी-मुक्ति

डाला जाय तो यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि वे 'वाक्-पुरुष' नहीं बल्कि 'कर्म-पुरुष' थे। मेहताजी का पुरुषार्थ प्रत्यक्ष रूप में हमने बिहार के सहरसा में देखा है।

स्व. कृष्णराजजी के दामाद व मुम्बई के वरिष्ठ पत्रकार रमेश ओझा ने बताया कि जैसे कोई साधक अपनी साधना में लीन हो जाता है, उसी प्रकार बाबूजी अंतिम समय में अपनी साधना में लीन हो गये थे। अंतिम समय तक उनके मन में साधना केन्द्र रचा-बसा रहा, इस परिसर से उन्हें बेहद लगाव था। वाराणसी को वे काफी पसंद करते थे। जब वे वर्ष 2008 में आखिरी बार वाराणसी आये थे, तब एक गीत—'टूट जाये न माला कहीं प्रेम की, वरना अनमोल मोती बिखर जायेंगे। आप मानो न मानों खुशी आपकी, हम मुसाफिर हैं कह कर चले जायेंगे'—गाया था। सही मायने में इस गीत के माध्यम से उन्होंने एक-दूसरे से जुड़े रहने और एक-दूसरे को जोड़े रहने का संदेश दिया था।

स्व. कृष्णराजजी की पुत्री श्रीमती साधना ने अंतिम दिनों में उनके साहस और सहनशीलता से सभी को अवगत कराया। अंत में बाबूजी के उपर्युक्त गीत को आपने स्वर दिया और उपस्थित सभी साथियों ने आ. कृष्णराजजी को नमन् किया।—स.ज.प्रतिनिधि

भी करनी होगी।

क्रांतिमूलक कार्यक्रम उठायें : इस प्रकार स्त्रियों की शक्ति समाज परिवर्तन के काम में लगनी चाहिए। समाज में नये मूल्य दाखिल करने होंगे। समाज की शील-रक्षा, शांति-रक्षा, सभ्यता तथा संस्कृति की रक्षा बहनों के द्वारा ही हो पायेगी। बाकी जो मामूली सेवा के काम हैं, वे तो दुनिया में अखंड चलते रहेंगे। स्त्रियों की शक्ति क्रांति के काम में लगनी चाहिए। अहिंसक समाज-रचना की स्थापना में बहनों का बहुत बड़ा सहयोग मिल सकता है। □

खादी : अब तो करो या मरो की स्थिति

खादी मिशन के संयोजक बालविजय भाई की अध्यक्षता में 16-18 सितंबर, 2016 को 'खादी सभा' की तीन दिवसीय बैठक नई तालीम समिति, सेवाग्राम के 'शांति भवन' में सम्पन्न हुई।

सेवाग्राम आश्रम प्रतिष्ठान के अध्यक्ष जयवंत मठकर ने अपनी बात रखते हुए कहा कि इस सभा में बहनों की सहभागिता तो नहीं के बराबर है, जो हमारी सोच को दर्शाता है। हमारी संस्थाओं की प्रमुख बहनें कैसी बनें, इसका हमें गंभीरता के साथ खयाल रखना होगा। क्योंकि जिस गांधी का नाम हम उठते-बैठते लेते रहते हैं, वह हिन्दुस्तान का पहला इंसान है, जिसके आंदोलन में सामान्य से सामान्य महिला भी पूरी ताकत से उतरीं। हम जानते हैं कि गणिकाओं ने भी गांधी के आंदोलन में सहभागिता की हैं।

खादी मिशन के संयोजक बाल भाई ने सभा के सामने हमारे लक्ष्य को दोहराते हुए बताया कि हमें साम्ययोगी समाज का निर्माण करना है। इस निर्माण-कार्य में आज हम कहां हैं, हमें अपने अंदर इसे टटोलना चाहिए। एक बात हमें पूरी तरह स्पष्ट हो जानी चाहिए कि हम जब खादी शब्द इस्तेमाल करते हैं, तो उसमें ग्रामोद्योग समाहित है।

बाल भाई के उद्बोधन का हवाला देते हुए अध्यक्ष जयवंत मठकर ने आगे कहा कि खादी मिशन प्रमुखतः एक वैचारिक मंच है। हमारी विरासत कैसी होगी, हमारी वसीयत कैसी होगी तथा सरकार हमारा क्या करने जा रही है, का जो चित्र है, इसे केवल एक शब्द में कहें तो स्थिति 'भयानक' है। इसकी आहट की शुरुआत हो चुकी है। अब तो 'करो या मरो' की स्थिति आ गयी है। इन सारी परिस्थितियों से हमें मुकाबला करना होगा।

सरकार से मदद लेना एक अलग बात है और कमीशन से मुक्ति अलग। केवल महाराष्ट्र में महात्मा गांधी मिशन, गांधी तीर्थ, यूसुफ मेहर अली सेंटर जैसी कम से कम चार ऐसी बड़ी संस्थाएं हैं, जो कमीशन से मुक्त खादी ग्रामोद्योग उत्पादन कर उन्हें न केवल देश में बल्कि विदेशों में भी बेच रही हैं। आंध्र में भी ऐसी कुछ संस्थाएं हैं। इनमें एक से एक अनुभवी एवं समर्पित कार्यकर्ता हैं। ऐसी

संस्थाएं अन्यत्र भी होंगी, ऐसा मैं मान रहा हूँ। ये संस्थाएं भी बैंक से कर्ज लेती हैं, लेकिन अपनी शर्तों पर।

हम खादी विक्रेता नहीं हैं और न ही हमारा कोई ग्राहक है। हम आज की बाजारू अर्थशास्त्र के शब्द इस्तेमाल नहीं करेंगे। हमारे समर्थन में खादी पहनने वाले, इस्तेमाल करने वाले आयेंगे, जिन्हें हम खादी परिवार के सदस्य मानते हैं, न कि ग्राहक। हमारा लागत चार्ट ही हमारी पहचान है। हम 'न लाभ-न हानि' के आधार पर काम करने वाले लोग हैं। हमारी संस्था समाज की देन है न कि उद्योगपतियों की तरह व्यक्तिगत सम्पत्ति। इसीलिए संयोजकजी ने 'ट्रस्टीशिप' शब्द का इस्तेमाल किया है।

मित्रो! खादी मिशन, खादी समिति, खादी ग्रामोद्योग आंदोलन, कृपालानी ट्रस्ट एवं अन्य खादी संगठन, जो खादी मिशन से संबंधित नहीं हैं, ऐसे खादी उत्पादक, खादी समर्थक, स्वावलंबी खादी वाले, ग्रामाभिमुख खादी वाले, गांधी संस्थाएं मिलकर एक साझा मंच बनायें, जैसे-अखिल भारतीय खादी उत्पादक, वितरक एवं समर्थकों का महासंघ या नेशनल अलायंस ऑफ खादी प्रोड्यूसर, डिस्ट्रीब्यूटर्स एंड सपोर्टर्स (एनए केपीडीएस) या नेशनल खादी पीपुल्स एलायंस हो।

इसी के साथ हमें यह भी ध्यान देना है कि वर्ष 2018-19 गांधी के जन्म का 150वां साल है। पूरी दुनिया इसे अपने-अपने तरीके से मनायेगी। इस निमित्त सारी गांधी संस्थाएं एक मंच पर एकत्र आयें, इसीलिए 'गांधी-150' का कार्यालय सेवाग्राम आश्रम में स्थापित किया गया है। इसकी पहली बैठक बुलाने की जिम्मेदारी गांधी के समय की आठ संस्थाओं ने उठायी है, जिसमें सब कुछ तय होगा।

'गांधी-150' के साथ हमारा संबंध यह होना चाहिए कि इस वर्ष तक अपने आपको कमीशन से मुक्त होने का लक्ष्य रखें। इसे एक अभियान का स्वरूप दिया जाये, जिसका नाम हो 'खादी रक्षा अभियान'। इसके अंतर्गत निम्न बिन्दुओं पर लक्ष्य करना चाहिए :

1. इस मंच की तरफ से आज के अर्थमंत्री को हमारी मांगों का पत्र जाय। पत्र में

हम उन्हें तीन माह का समय दें। तीन माह में जवाब नहीं मिलता है तो अगला कदम उठाया जाय। 2. एक निश्चित दिन हम बड़ी संख्या में अपनी मांगों को लेकर दिल्ली में किसी जगह, संभवतः राजघाट के सामने वाले पद पथ पर कतारें यज्ञ करें, जो तीन दिन तक चले। 3. इस मंच को खादी प्रमाण-पत्र देने की शुरुआत करनी चाहिए और हमें उसके लिए जो कदम उठाने हैं—प्रमाण-पत्र समिति बनाना, प्रमाण-पत्र का सर्वमान्य स्वरूप बनाना, नियमावली बनाना—को उठायें। 4. कोई एक संस्था सर्वोच्च अदालत में जनहित याचिका द्वारा यह मुकदमा दायर करे कि हमारी कर्ज के कीमत की सम्पत्ति छोड़ बाकी सम्पत्ति मुक्त करे। 5. निम्न काम तत्काल शुरू करने होंगे—

- * हम अपने पुनि यंत्र हर प्रदेश में शुरू करें। इसकी तांत्रिक जानकारी हममें से कई लोग दें। उसके लिए समिति बनायी जाय।
- * हमारे लागत चार्ट की नियमावली बनाने तथा अपने में जो लोग सही खादी नहीं बनाते या बेचते उन्हें दुरुस्त करने की नियमावली एवं देखरेख के लिए एक समिति बनायी जाय।
- * मंच का एक कार्यालय हो और एक संयोजक तथा प्रबंधसमिति भी। यह संभवतः देश के मध्य में हो ताकि सभी ओर के लोगों को आने-जाने में सुविधा हो।
- * ये सभी कार्यक्रम इस तरह से समयबद्ध हो कि हम 2018 तक कमीशन से मुक्त हो सकें।
- * इन सारी समितियों की हर तीन माह पर बैठकें हों।
- * समितियों में क्षेत्रीय या ऐसे लोग हों, जो कम दूरी पर हों और सहजतापूर्वक आपस में मिल सकें।
- * हमारे इन सारे कार्यक्रमों को हिन्दी व अंग्रेजी में साझा करने वाली त्रयमासिक पत्रिका हो। पत्रिका के हर अप्रैल के अंक में हमारे हिसाब भी प्रकाशित हों। ईश्वर हम सभी को इस मुक्ति अभियान में शक्ति दे, इस भावना के साथ आप सभी को जयजगत! —जयवंत मठकर अध्यक्ष, सेवाग्राम आश्रम प्रतिष्ठान

कविताएं

अपने उत्तर प्रदेश को
ढूँढ़ता हूँ

□ केशव शरण

मेरी एक आंख
लखनऊ की ओर
देख रही है
एक आंख
वरुणा कॉरीडोर
जो रुका पड़ा है

मेरे पास
तीसरी आंख होती तो
मैं गतिरोध को
भस्म कर देता
इसी कॉरीडोर से
मैं दूर संगम तक जाता
जहां यह गंगा से मिलती है

और मिलने से ज़रा पहले
ऐसा मुड़ती है
कि भारत का नक्शा
बन जाता है
मैं जिसमें अपने उत्तर प्रदेश को ढूँढ़ता
हूँ
सर्व सेवा संघ की
शांति कुटी से
गांधी विद्या संस्थान की
चारदीवारी से
ऊंचे कृष्णमूर्ति पथ से

चिन्हता नहीं

हाथी
सायकिल
कमल
हाथ का पंजा
ये चार प्रमुख चिन्ह हैं
जिनमें हमें चिन्हना है

कौन-सा चिन्ह हमारा है
और उस पर
स्वास्तिक का निशान बिठाना है
चुनावी अनुष्ठान में
हालांकि,
अब इलेक्ट्रॉनिक मशीन का
जमाना है
लेकिन हमारी भावना वही है

जिस चिन्ह को
स्वास्तिक का सबसे ज्यादा
निशान प्राप्त होगा
उसमें से निकलेगा
एक जनसेवक
विधान भी यही है
मगर निकलता है राजपुरुष
और वह
हमें चिन्हता नहीं
सही है

अधिनायक

□ डॉ. पुष्पलता 'अधिवक्ता'

अंधेरे की गवाही पर
फांसी पर झूलने को
तैयार है अधिनायक
उतारने जय बोलने
ले जाने को तैयार हैं
लोग
पोस्ट मार्टम करने को
डॉक्टर
शव पर लिपटने को
तिरंगा
चिता जलाने को
सर झुकाकर
शमशान का अधिकारी

बहस करने को मीडिया
लाइव प्रोग्राम देखने को
दर्शक
तैयार हैं सब
कोई नहीं कहता
मत झूलो फांसी पर
सबूत है अंधेरे के खिलाफ
करके आये हैं अपील
हो जाओगे
बाइजजत बरी
बस अंधेरी खाइयों में
अभावों व भूख से भरी
आत्माएं चीख रही हैं
रुको रथ पर सूरज
आने वाला है

बचाकर ले जायेगा
कहार बनकर
दुल्हन की तरह
विकास की मंजिल पर
अंधेरे के साथ
बैठकर
चाय पी रहा है
सूरज
चन्द्रमा का नाम
काट दिया गया है
लिस्ट से
गूँज रहे हैं
ठहाके
उतार लिया गया है
अधिनायक का शव